मूल्य एक रुपया

प्रथम संस्करण सं० २००२

द्वितीय संस्करण सं० २००४

तृतीय संस्करण सं० २००९

प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशी।

मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी। ४१३९–०८

दो शब्द

भारतकी कतिपय गम्भीर समस्याओंके प्रति लोगोंका ध्यान आकृष्ट करने एवं ऐसे विषयोंका ज्ञानवर्द्धन करके जनमत तैयार करनेके उद्देश्यसे जो समय पाकर नीति और कर्मपर प्रभाव डाल सकें, ताता कम्पनी कुछ पुस्तकें प्रकाशित कर रही है। यह उस पुस्तक-मालाकी पहली पुस्तक है।

इस मालाकी पहली पुस्तकमें सर्वव्यापी एवं सबसे प्रधान समस्या भूख और उसकी तुष्टिपर विचार किया गया है। 'खाद्य' आजका सबसे दुःखद प्रसङ्ग है। खाद्यके उपभोक्ता सभी हैं और उनमेंसे दो-तिहाईसे अधिक उत्पादक हैं।

भोजनभट्ट जैसे कष्टदायक जीवनकी वृद्धिकी आशंका भारतमें नहीं है। वे तो संयुक्तराज्य अमेरिका जैसे धनी देशोंके विलास हैं, जो 'वॉलस्ट्रीट जर्नल' के शब्दोंमें, विध्वंसकारी युद्धके बीच अपनी खाद्य सामग्रीके बाहुल्यसे परेशान हैं। हमारी जनसंख्याका अधिकांश भाग तो किसी प्रकार जीवन-रक्षा कर सकनेवाले खाद्यमात्रपर अवलम्बित है और आजकी हमारी समस्या है कि किस प्रकार अधिक और उत्तम खाद्य उत्पन्न किया जाय। इस समस्याको तबतक हल नहीं किया जा सकता जबतक हम उसकी गुरुताका अनुभव न करें और समझें कि वह कैसे हल की जा सकती है। इसी कारण 'खाद्य' को इस मालाकी पहली पुस्तकके रूपमें चुना गया है।

इस पुस्तकको ताताके जन-सम्पर्क विभागके श्री एम० आर० मसानी ने लिखा है। कुछ थोड़े पाठकोंकी अपेक्षा विस्तृत क्षेत्रके पाठकोंतक पहुँचानेके ख्यालसे लेखकने उसे उस विषयका निबन्ध न बनाकर सरल और लोकप्रिय ढङ्गसे लिखनेकी चेष्टा की है। पुस्तकका चित्रण श्री ए० आर० एकाटने किया है।

पुस्तकको लिखनेमें भारत-सरकारके शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभागके अतिरिक्त मन्त्री (ॲडिशनल सेक्रेटरी) सर फीरोज खरेघाटने जो अमूल्य निर्देश दिये हैं, उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। 'न्यूट्रिशन रिसर्च लेबोरेटरीज़' कूनूरके डाइरेक्टर डाक्टर डब्लू० आर० एकरायडने विशेषज्ञके नाते प्रसन्नतापूर्वक जो सहायता दी है और अनुसन्धानशालामें प्राप्त जो सूचनाएँ और सुविधाएँ लेखकको दी हैं उसके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। किन्तु साथ ही हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वे लोग किसी भी प्रकार लेखक द्वारा प्रकट किये गये विचारोंके लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

यदि पुस्तक अधिक लोकप्रिय हुई तो इसका अनुवाद कुछ प्रमुख भारतीय भाषाओंमें भी करानेका विचार है। आजके नियन्त्रण, बन्धनोंके होते हुए भी जहाँतक सम्भव होगा ग्राम-सुधार-केन्द्रों और शिक्षण एवं अन्य संस्थाओंको, जो इसे खरीद नहीं सकतीं, पुस्तकें मुफ्त देनेका भी प्रयत्न ताता कम्पनीकी ओरसे किया जायगा।

एच० पी० मोदी

१ दिसम्बर १९४४

विषय-सूची

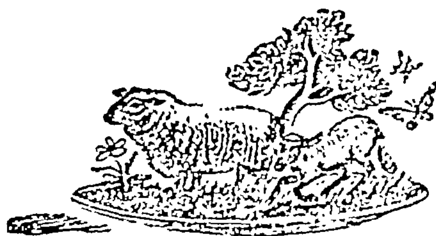
हमारी खूराक

अजीब बात

१

क्या आपने कभी इस बातपर भी विचार किया है कि मनुष्य ही केवल ऐसा प्राणी है जो अपना भोजन बोकर प्राप्त करता है ? अन्यथा दूसरे जीव तो अपना भोजन जिस दशामें और जहाँ भी वह मिलता है, खा लेते हैं या उसे इकट्ठा करते हैं और उसका ढेर लगाते हैं या तो फिर दूसरे जानवरोंको मारते हैं और उन्हें खाते हैं। इस अन्तरको डोरोथी वेलेजलीने नीचे लिखी पंक्तियोंमें बड़े सुन्दर ढङ्गसे व्यक्त किया है—

चरनेवाली भेड़ोंको देखो
अपने भोजनकी ओरसे
कितनी लापरवाह हैं।
वे अपनी खूराकपर ही
पैर रखकर खड़ी होती हैं
और अपनी खूराकपर
ही लेट जाती हैं।





यह बात हमें ऐसी अजीब न मालूम होती अगर हमारे पाँवके इर्दगिर्द मछलियाँ उगा करतीं और हमारा फर्श नारंगीके मुरब्बेका बना होता तथा बिस्तरा मक्खनमें तले हुए अण्डोंका।

केवल मनुष्य ही जमीनमें बीज बोता और फसल तैयार होनेकी प्रतीक्षा करता है। किन्तु यह बात हमेशासे यों ही नहीं है। प्रारम्भिक कालमें मनुष्य अपने खानेके लिए खेती नहीं करता था। आदिम मनुष्य केवल शिकारी और खाद्य संग्रह करनेवाला था। उसके बाद एक समय ऐसा आया जब उसे जिन वस्तुओंकी जरूरत है उन्हें वह जमीनसे पैदा कर सकता है। बहुतोंकी धारणा है कि आदिम जातिकी कुछ स्त्रियोंने—जिनका चित्र यहाँ दिया गया है—हठात् यह अद्‌भुत् आविष्कार किया था।



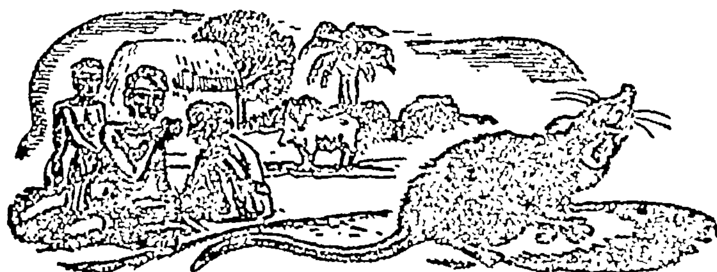
उन्होंने अपने ऊबड़-खाबड़ झोपड़ोंके आस-पास या तो जङ्गली अनाजको छींट दिया या बीजोंको खाकर थूक दिया और कुछ समयके बाद उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उन बीजोंसे तो एक नयी फसल पैदा हो गयी है।



कृषि-विद्याके आविष्कारका यह परिणाम हुआ कि इस जमीनसे क्रमशः बहुतसे मनुष्योंके लिए खाद्य-सामग्रीका संग्रह करना सम्भव हो गया। पृथिवीकी जन-संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती रही है और इस वृद्धिका क्रम घटाया नहीं जा सकता। हमारा हिन्दुस्तान भी उन देशोंमेंसे एक है जहाँ आबादीकी तरक्की जोरोंसे होती

रही है, यानी उन देशोंमेंसे एक है जिनकी आबादी बहुत घनी है।

किन्तु ऐसा मालूम होता है कि इस वृद्धिमें कहीं कोई खराबी पैदा हो गयी है। क्योंकि हम यह देखते हैं कि भारतकी भूमि अपने निवासियोंके लिए पर्याप्त खाद्य-सामग्रीका प्रबन्ध नहीं कर सकती। भारतमें आत्म-विरोधकी एक विचित्र ही उक्ति पैदा हो गयी है। एक ओर जिसके पास बृहत् भूखण्ड है, जिसपर खेती होती है, यानी छत्तीस करोड़ एकड़। उसमें अस्सी फीसदीपर अन्न और चारेकी खेती होती है। हमारी इस जमीनका अधिक भाग स्वभावतः बड़ा उपजाऊ है। यहाँकी जलवायु भी अनुकूल है, प्रान्तोंकी आवश्यकतानुसार वर्षा भी यथेष्ट होती है। घने जंगल हमारी भूमिकी रक्षा करते हैं। साथ ही हमारे लिए आदमियोंकी भी कमी नहीं है। चालीस करोड़ आबादीमें पैंतीस करोड़ गाँवोंमें रहते हैं और उनमेंसे अस्सी प्रतिशत खेतीका काम करते हैं। खेतीबारीमें काम करनेवाले पशुओंकी संख्या भी यथेष्ट है। संसारमें पालतू जानवरोंकी संख्या सत्तर करोड़ है। उनमेंसे बीस करोड़ अर्थात् २८.६ प्रतिशत पशु भारतमें हैं।



यह सब होते हुए भी हमलोग अपने भोजनका प्रबन्ध करनेमें असमर्थ हो रहे हैं। हमलोगोंकी आँखोंपर ऐसी पट्टी बँधी है कि यदि कोई यह कहे कि हमारे देशके अधिकांश लोगोंको समयसे एक वक्त भी भरपेट भोजन नहीं मिलता तो भी हमें आश्चर्य नहीं होता। सन् १९४३ में

संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके हाट स्प्रिंग नामक स्थानमें खाद्य समस्यापर विचार करनेके लिए जो सम्मेलन हुआ था उसमें ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधियोंने यह बात स्वीकार की थी कि भारतके एक-तिहाई लोगोंको साधारण अवस्थामें भी पेटभर अन्न नहीं मिलता। सन् १९३३ में बंगालके स्वास्थ्य विभागके डाइरेक्टरने जो वक्तव्य दिया था वह इससे भी अधिक दर्दनाक था। उन्होंने कहा था कि बंगालके किसान ऐसे भोजनपर निर्वाह कर रहे हैं जिसे खाकर चूहे भी कुछ हफ्तोंसे अधिक जीवित नहीं रह सकते। यह बात प्रायः दस साल पहलेकी है और इधर दुर्भिक्ष-जाँच-समितिके कथनानुसार (१९४३-४४ में) बंगाल प्रान्तमें-लगभग पैंतीस लाख आदमी भूख या भूखसे उत्पन्न होनेवाली बीमारियोंके कारण मर गये।

यह क्यों हुआ? यह दुःखद घटना किस प्रकार समझायी जाय? इस शोचनीय दशाका अन्त करनेके लिए कौन-सा प्रयत्न किया जाय? इस पुस्तकमें इन्हीं विषयोंकी आलोचना की गयी है।



हम क्यों खाते हैं ?

२

हम प्रतिदिन कुछ काम अभ्यासवश करते हैं और उनके सम्बन्धमें कभी कोई विचार नहीं करते। हम सुबह सोकर उठते हैं, एक जगहसे दूसरी जगह जाते हैं, लोगोंसे मिलते-जुलते और बातें करते हैं और रात होनेपर सो जाते हैं। हमारे खाने-पीनेका भी बस यही हाल है। इस कामको भी हम बिना सोचे-समझे करते हैं। यदि कोई हमें रोककर पूछे 'खाना क्यों खाते हो?' तो हम सिटपिटा जायँगे और नाराज होकर उत्तर देंगे 'यह भी कोई सवाल है?' 'क्या आप खाना नहीं खाते?' किन्तु यह उचित सवाल है और हममेंसे हर मनुष्यको इस सवालका जवाब मालूम होना चाहिये।

यदि हमसे आग्रहपूर्वक फिर पूछा जाय तो हममेंसे बहुतसे लोग सम्भवतः यही कहेंगे कि खाना अच्छा लगता है इसीसे खाते हैं। यह जीवनकी अमूल्य वस्तुओंमेंसे एक है। ज्ञानियोंने दीर्घकालके ज्ञान और अनुभवसे यह कहा है कि सुख-भोगके लिए स्थायी और विश्वसनीय उपायोंमेंसे भोजन अद्वितीय वस्तु है। किन्तु हमलोगोंमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी भोजनमें रुचि नहीं है, खाने-पीनेको वे एक झंझट समझते हैं—उनका कहना है कि बिना भोजन किये निर्वाह नहीं होता इसीलिए भोजन करते हैं; जीवित रहनेके लिए खाते हैं, खानेके लिए जीवित नहीं रहते। बात बिलकुल सत्य है। कुछ ही दिन पहलेकी बात है, महात्मा गान्धी बिना कुछ खाये इक्कीस दिनोंतक जीवित रहे। सतहत्तर दिनोंतक भोजन न करके जीवित रहनेका दृष्टान्त भी हमें मिलता है। किन्तु यह सब अपवादमात्र हैं जिनसे उक्त नियमका ही समर्थन होता है। सहिष्णुताके दृष्टान्त लोगोंको आश्चर्यमें डाल देते हैं। इन्हीं दृष्टान्तोंसे यह मालूम होता

है कि हमारा जीवन भोजनपर कितना निर्भर करता है। इसके बिना समस्त मानवजाति कुछ ही सप्ताहमें अपना अस्तित्व मिटा देगी—यह भी उक्त बातका प्रमाण है।

वास्तवमें भोजन क्या है और वह किस प्रकार हमें जीवित रखता है? वह किस तरह हममें प्राण-शक्तिका सञ्चार करता है? भोजनके तीन प्रधान काम हैं—(१) बल-प्रदान (२) शरीरका बनाना और उसकी वृद्धि करना एवं (३) आभ्यन्तरिक अवस्था और प्रक्रियाओंको जिन्दगी कायम रखनेके लिए नियन्त्रित करना।

भोजनका पहला काम है मानव-शरीरमें शक्तिसञ्चारके लिए ईंधन जुटाना। इस सिद्धान्तसे शरीरकी तुलना एक स्टीम एञ्जिन अथवा चलती हुई मोटरगाड़ीसे की जा सकती है। जिस प्रकार एञ्जिन या मोटर चाहे वे कितने ही अच्छे क्यों न बने हों—बिना ईंधनके नहीं चल सकते उसी प्रकार मानवशरीर भी ईंधनके बिना अपना काम नहीं कर सकता। हमारा ईंधन वास्तवमें कोयला या पेट्रोल नहीं है बल्कि भोजनकी सामग्री कुछ ऐसी वस्तुओंसे तैयार होती है जिनमें स्निग्धता और कार्बोहाइड्रेटका अंश सम्मिलित रहता है। प्रोटीन भी कभी-कभी ये ईंधनका काम देता है। आक्सिजन और पानीके सहयोगसे ये ईंधन आवश्यक गर्मी और बल पैदा करते हैं जिनसे हमारा शरीर हिलता-डोलता है और मस्तिष्क काम करता है। मांस और साग-सब्जी—इन दोनों प्रकारके भोजनमें स्निग्धता और चर्बी मौजूद है। बकरीके मांसकी चर्बी, मक्खन, घी और मछलीका तेल ये सब पशुओंकी चर्बीमें शामिल हैं। साग-तरकारीसे उत्पन्न चर्बीके उदाहरणमें जैतूनका तेल, बादाम, नारियल, तिल और सरसोंका तेल पेश किया जा सकता है। कार्बोहाइड्रेट दो तरहके होते हैं—एक, श्वेतसार और दूसरा, शर्करा। चावल और अन्यान्य अन्न, साबूदाना, जौ, आलू और नाना प्रकारके दूसरे खाद्य पदार्थोंमें श्वेतसारका पता चलता है और शर्करा पायी जाती है गन्ना, शहद और फलोंमें।

भोजनका दूसरा काम है शरीर-गठन और उसकी वृद्धिके उपयोगी सामान एकत्र करना। शरीरकी मरम्मतका भार भी उसीपर निर्भर है। मानव-शरीरकी वृद्धिकी तुलना एंजिन अथवा मोटरगाड़ीसे न करके गृह-निर्माणके साथ की जा सकती है। एक मकान तैयार करनेमें भिन्न-भिन्न चीजोंकी जरूरत पड़ती है—पत्थर, ईंट, सीमेन्ट, लकड़ी, शीशा, खपड़ैल आदि। ठीक उसी प्रकार मनुष्य शरीर तैयार करनेके लिए नाना प्रकारके सामानकी जरूरत है। वैज्ञानिक और चिकित्सक आदि जानकार लोगोंका कहना है कि इन सब सामग्रियोंमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रोटीन नामक पदार्थ है। इस प्रोटीनकी सहायतासे ही मांस और मांसपेशियाँ एवं मस्तिष्क, यकृत् मूत्र-ग्रन्थि, हृदय आदि शरीरके विचित्र अंश तैयार होते हैं। इस प्रोटीनके द्वारा ही गर्भस्थ शिशु माताके गर्भमें बढ़ता है। जबतक गर्भस्थ शिशु पूर्ण वयस्क पुरुष अथवा स्त्री नहीं हो जाता तबतक प्रोटीन नाना प्रकारसे शिशुके विकासमें सहायता करता रहता है। क्रमशः परिश्रम और हिलने-डोलनेके फलसे शरीरकी जो शक्ति क्षीण होती है उसकी पूर्ति करनेके लिए भी प्रोटीन आवश्यक है। ये प्रोटीन नामक पदार्थ जिस प्रकार दूध, मांस, अण्डा, मछली आदि आमिष आहार-में हैं उसी प्रकार दाल, बादाम आदि उद्भिज एवं थोड़ी मात्रामें साग-सब्जीमें भी पाये जाते हैं। भोजनके दो और तत्त्व हैं जो शरीर-गठनमें मदद देते हैं यद्यपि वे विशेष जरूरी नहीं हैं। उनमें एकको चर्बी कहते हैं जो हम सबमें भिन्न-भिन्न मात्रामें मौजूद है। जब यह उचित मात्रामें हमारे शरीरमें रहती है तब यह हमारे शरीरको कोमल, सुडौल और सुन्दर बनाती है। दूसरा पदार्थ धातव लवण है जो हमारी हड्डियों और स्नायुओं-को बनानेमें मदद करता है। इन दोनों तत्त्वोंके सम्बन्धमें विस्तृत बातें आगे चलकर बतलाई जाएँगी।

भोजनका तीसरा खास काम है उन सारी व्यवस्थाओंपर नियंत्रण करना जो शरीरके विभिन्न अंशोंको अपने-अपने काममें चालू रखती और शरीरके अन्दरके उस सूक्ष्म सामञ्जस्यको कायम रखती हैं जिसके बिना

जिन्दगीकी मशीन नहीं चल सकती। यह बात सुननेमें अद्‌भुत मालूम होती है लेकिन भोजनके जिन तत्त्वोंसे यह काम होता है, वे भी अद्‌भुत ही हैं। उन्हें हम 'विटामिन' कहते हैं। यह नाम उन तत्त्वोंका सन् १९१२ में पड़ा। इसके माने हैं जिन्दगीके लिए जरूरी अर्थात् 'खाद्यप्राण'। भिन्न-भिन्न विटामिनके भिन्न-भिन्न काम हैं। कभी तो वह मानव-शरीर तैयार करनेके काममें आनेवाले तत्त्वोंका नियंत्रण करता है और कभी वह मोटरगाड़ीके लिए जरूरी तेलके साथ तुलना करने योग्य हो जाता है। यह तेल यदि न हो तो सिर्फ पेट्रोलकी (स्नेह और कार्बोहाइड्रेटकी) सहायतासे मोटर नहीं चल सकती। एक तरहसे इन्हें भोजनके प्रधान तत्त्वोंका सहायक कहा जा सकता है। मानव-शरीर अपनी आवश्यकताके अनुसार उन्हें उत्पन्न नहीं कर सकता किन्तु जीवन-रक्षाके लिए ये बहुत जरूरी हैं। भोजनके अन्दर 'विटामिन' इतना सूक्ष्म और अल्प मात्रामें रहता है कि इस शताब्दीके आरम्भतक इसके अस्तित्वका किसीको पतातक नहीं था। किन्तु अब उन्हें मूल पदार्थोंसे केवल अलग ही नहीं किया जा सकता बल्कि रासायनिक क्रियाओं द्वारा बनाया भी जा सकता है जिन्हें हम यौगिक खाद्यप्राण कहते हैं।

हास्यरसके अंग्रेज कवि ए० पी० हर्बर्टने इस विषयमें अपनी एक मजेदार कवितामें अच्छा उपदेश दिया है—

विटामिन 'ए'—
सूखेकी बीमारीको दूर रखता है
दुर्बल और उभड़ी हुई नसवालोंको लाभ करता है
'बी'—वह वस्तु है जिसकी कमीका अनुभव तुम उस समय करते हो
जब तुम्हारी पाचन-शक्ति निर्बल पड़ जाती है
'सी'—मसूड़ोंकी बीमारीका दुश्मन है
इसलिए जब आदमी भोजन करने बैठे
तो उसे इन पंक्तियोंमें गुनगुनाना चाहिये
वरना यकीन है कि उसे इसके लिए पछताना पड़ेगा

विटामिन-प्राप्ति के साधन

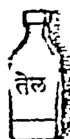
ए



मक्खन



मछलीका



पशुओंका कलेजा





हरी तरकारियाँ

बी[1]



अनाज

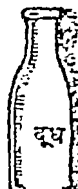


गिरी



दाल

बी[2]





खमीर

सी



ताजे फल



नारंगी और नींबूका रस



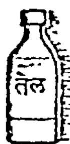
आँवला

डी



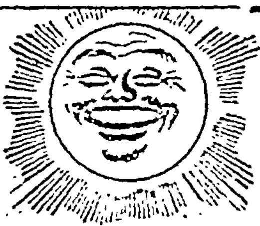
अण्डे

मछलीका





मक्खन

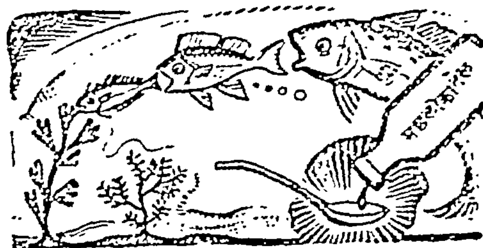


अपने आपसे तुम्हें यह पूछना चाहिये
'मुझे कौन-सा रोग है
और इस रोगका इलाज किस विटामिनसे हो सकता है?'

विटामिन 'ए' का खास असर आँख, त्वचा और उन झिल्लियोंपर होता है जिनसे भीतरी इन्द्रियाँ जैसे फेफड़ा और पाकाशय आच्छादित हैं। जब इसको काफी तायदादमें नहीं खाया जाता तो खराबी पैदा हो जाती है। आँखका रोग 'केराटोमालेशिया' जो भारतवर्षके किसी-किसी प्रान्तमें अन्धा होनेका खास कारण है—विटामिन 'ए' की निरन्तर कमी पड़ते रहनेसे होता है। बड़े दुःखकी बात है कि इस रोगके कारण हर साल बहुतसे बच्चे अन्धे हो जाते हैं। आँखका एक रोग और है जो इतना घातक नहीं है, ठीक इसी प्रकार पैदा होता है—उसे रतौंधी कहते हैं। इसके फलस्वरूप स्वस्थ लोगोंको दिनमें तो सब कुछ अच्छी तरह दिखायी पड़ता है; किन्तु रातमें कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रामें ग्रहण करनेसे रतौंधी बहुत जल्द दूर हो जाती है। विटामिन 'ए' की कमीके कारण और एक रोग होते देखा जाता है, उसमें चमड़ा सूखकर रूखा और खुरखुरा हो जाता है, देखनेमें ठीक मेढ़कके चमड़ेके समान हो जाता है—इसीसे इसे प्रायः 'टोड स्किन' की बीमारी कहते हैं।

अब आप यह मालूम करना चाहेंगे कि विटामिन 'ए' किन जानवरोंके मांसमें और किन उद्भिज पदार्थों यानी साग-सब्जीके भोजनमें मिलता है। साग-सब्जीके भोजनमें जब यह मिलता है तो इसे केरोटीन या प्रो-विटामिन कहते हैं। यह स्थल और जलकी हरी चीजोंमें पाया जाता है यानी जमीनके पौधोंमें भी होता है और समुद्री पौधोंमें भी। विटामिन 'ए' को पानेके लिए या तो हमें खुश्की जमीनकी साग-तरकारी, खासकर गाजर तथा पत्तेदार चीजें खानी चाहिये और या उन जानवरोंका दूध अथवा कलेजा खाना चाहिये जो हरे-भरे मैदानोंमें चरा करते हैं। समुद्री पौधोंका विटामिन हमें सीधे उन पौधोंसे नहीं मिलता। पौधे

या बहुत छोटी मछलियाँ पहले इन पौधोंको खाती हैं, पश्चात् उनको कुछ बड़ी मछलियाँ खाती हैं, बादमें उन कुछ बड़ी मछलियों-को उनसे बड़ी मछ-लियाँ जैसे कॉड, शार्क आदि खाती हैं। फिर हम उन मछलियोंको खाते हैं। अच्छा तरीका तो यह है कि जब हम उन कॉड, या शार्क मछलियोंके कलेजेका तेल पीते हैं, तब हमें इस विटामिनका कुछ हिस्सा मिलता है। इसपर कविके ये पद याद आते हैं—



बड़े पिस्सुओंकी कमरपर
छोटे पिस्सू काटनेके लिए होते हैं
और छोटे पिस्सुओंको काटनेके लिए
उनसे भी छोटे पिस्सू होते हैं
और सिलसिला योंही चलता रहता है।

विटामिन 'बी' के बारेमें शुरूमें लोगोंका यह ख्याल था कि वह एक ही तत्व है, किन्तु अब यह पता चला है कि 'विटामिन 'बी' की बहुत-सी किस्में हैं जिनको विटामिन 'बी'(१) और 'बी'(२) में विभक्त किया गया है। विटामिन 'बी'(१) बहुत आवश्यक है। यह शरीरके अन्दर कार्बोहाइड्रेटके कामको नियन्त्रित करता है। शरीरमें इसका अभाव होनेपर बेरीबेरीकी बीमारी हो जाती है जिससे पैर कमजोर और निःशक्त हो जाते हैं और हृत्पिण्ड शरीरमें खून पहुँचाना बन्द कर देता है। हमारे देशके आन्ध्र प्रान्तके किसी-किसी भागमें तथा बाहर चीन, जावा और पूर्वी एशियाके अन्यान्य देशोंमें बेरीबेरीकी बीमारी प्रायः देखनेमें आती है। अब यह देखना है कि यह बीमारी क्यों होती है और किन-किन खाद्योंमें विटामिन 'बी'(१) मिलता है।

विटामिन 'बी'(१) अन्यान्य अनेक चीजोंके सिवा दाल, बादाम और खमीरके भीतर अधिक मात्रामें पाया जाता है। बेरीबेरीका रोग तब होता है जब हम मिलका कूटा-पीसा चावल और गेहूँ खाते हैं। कारण यह है कि अन्नके ऊपरके जिस पतले छिलके और बीजमें विटामिन 'बी'(१) रहता है, वह मिलकी छँटाई और पालिशसे चावल और आटेमें नहीं रह जाता। यह बीमारी उन जगहोंमें अधिक पायी जाती है जहाँ कच्चा चावल खाया जाता है अर्थात् जहाँ चावलको मिलमें कूटनेसे पहले उबाला नहीं जाता। आन्ध्र प्रान्तके एक हिस्सेके लोग उक्त प्रकारका कच्चा चावल खाते हैं इसीसे उन्हें अक्सर यह बीमारी होती है।

विटमिना 'बी' (२) के बारेमें अब यह मालूम हुआ है कि इसमें तीन मुख्य भोज्य हैं। उनमें एक भोज्य आँख, जीभ और अँतड़ियोंको स्वस्थ रखता है। विटामिन 'बी'(२) खड़े अनाज, दाल, दूध, कलेजा और खमीरसे मिलता है।

विटामिन 'सी' खून बनानेके लिए बड़ा मूल्यवान और त्वचाके लिए बड़ा हितकर है। इस विटामिनकी कमीसे 'स्कर्वी' नामकी बीमारी होती है जिसमें दाँत और मसूड़े फूल जाते हैं और गाँठोंमें दर्द होता है तथा शरीरके विभिन्न भाग फूल जाते हैं। इसके सिवा साधारण स्वास्थ्यके लिए भी विटामिन 'सी' बहुत जरूरी है।

ताजे फलों, साग-तरकारियों और अंकुरित दालमें विटामिन 'सी' मिलता है। इस विटामिनको प्राप्त करनेके लिए अच्छा जरिया है आँवला। यह विटामिन नारंगियोंमें भी है, किन्तु एक आँवलेमें यह विटामिन दो नारंगियोंके बराबर होता है। यों तो विटामिनका पता इसी शताब्दीमें लगा है किन्तु ईसाके तीन शताब्दी पूर्व सम्राट् अशोकने, जिनकी गणना संसारके बड़े-बड़े नीतिज्ञोंमें की जाती है, आँवलेके फलोंमें विटामिन 'सी'का पता लगा लिया था। एक बार लङ्काके सम्राट्के पास उन्होंने एक टोकरी आँवला भेंट स्वरूप भेजा था।

विटामिन 'डी' के सम्बन्धमें विचार करना अब शेष रहा जिसका

प्रभाव दाँत और हड्डियोंपर पड़ता है। शरीरमें विटामिन 'डी' की कमीसे एक बीमारी होती है। यदि वह बीमारी बच्चोंमें होती है तो सूखा या सुखण्डी कही जाती है और जवानों खासकर औरतोंमें होनेपर 'ऑस्टी-ओमलेशिया', जिसका अर्थ है हड्डियोंका पिलपिला हो जाना। इस बीमारीमें हड्डी पिलपिली होकर झुक जाती है जिससे आदमी लँगड़ा हो जाता है। यह रोग खासकर गर्भावस्थामें होता है। इसका कारण यह है कि गर्भ-स्थित शिशुकी हड्डियाँ माँकी हड्डियोंमेंसे विटामिन 'डी' और हड्डी बनानेवाले अन्य तत्त्वोंको लेकर बनती हैं। यदि इस कमीकी पूर्ति नहीं की जाती तो माँकी हड्डियाँ झुककर टेढ़ी हो जाती हैं जिससे माँ कुब्ज हो जाती है। इससे उसका कूल्हा सिकुड़ जाता है और फिर हो सकता है कि भविष्यमें उसके कोई सन्तान ही न हो। शुद्ध दूध और दूधका मक्खन, घी आदिमें, अण्डोंमें तथा किसी-किसी मछलीमें विटामिन 'डी' मिलता है। मछलीके कलेजेके तेलमें यह विटामिन पर्याप्त मात्रामें रहता है। यही कारण है कि सूखेकी बीमारी और ऑस्टी-ओमलेशियाको कॉड या शार्क मछलीका तेल या खालिस विटामिन 'डी' का सेवन कराकर अच्छा किया जा सकता है। विटामिन 'डी' प्राप्त करनेके लिए एक और उपाय है—सूर्यकी किरण। हमारी त्वचापर सूर्य-रश्मियोंके पड़नेसे विटामिन 'डी' पैदा होता है। दक्षिण और मध्य भारतमें धूप तेज होनेके कारण इस बीमारीकी शिकायत बहुत कम होती है; किन्तु उत्तर भारतके लोग खासकर स्त्रियाँ जो पर्देमें रहती हैं बुरी तरह इस बीमारीका शिकार बनती हैं।

इनके अतिरिक्त और दूसरे विटामिन भी हैं, किन्तु उनका विशेष महत्व नहीं है इसलिए उनकी चर्चा नहीं की जायगी।

एक और खाद्यवस्तु है, जिसका नाम है धातुसे उत्पन्न नमक या खनिज क्षार, इसका काम भी बहुत अंशोंमें विटामिनके समान है। खनिज क्षारकी प्रायः तीस किस्में हैं। इनमें कुछ तो तेजाबी नमक होते हैं और कुछ क्षारद्रव्य पौष्टिक। दृष्टिमे इनमेंसे कैलशियम,

पोटैशियम, सोडियम, फासफोरस, लौह और आयोडिन मुख्य हैं। ये क्षार एक हदतक प्रोटीनकी तरह शरीर-गठन, खासकर हड्डी और दाँतकी बनावटमें तथा शरीरको सुचारु रूपसे चलानेमें मदद करते हैं।

आइये, इनमेंसे दो-एकपर दृष्टि डाली जाय। कैलशियमकी गणना अत्यन्त आवश्यक क्षारमें की जाती है—इसकी आवश्यकता होती है हृदय-स्पन्दनको चालू रखने, खूनको गाढ़ा करने तथा हड्डी और दाँतोंके बनानेमें। हममेंसे प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन कुछ कैलशियम ग्रहण करता और निकालता है। अतः इसको पूर्ण करना जरूरी होता है। बच्चोंको इसकी जरूरत बड़ोंसे अधिक होती है। गर्भिणी स्त्रियोंको तो इसकी और भी अधिक जरूरत होती है, इसलिए कि गर्भस्थ बच्चेके लिए भी इसकी विशेष आवश्यकता रहती है। कैलशियमका अंश जिन वस्तुओंमें अधिक होता है, उनमें दूध भी एक है। छोटे-छोटे बछड़ों, भैंसके लोचरों और मेमनोंको उतनी ही जरूरत होती है जितनी आदमीके बच्चोंको। इसीसे प्रकृति इसको दूधमें मुहैया करती है। पत्तेदार हरी तरकारियोंमें भी यह कैलशियम पर्याप्त मात्रामें रहता है।

हमारे शरीरके लिए लौह भी एक आवश्यक क्षार है। इसका काम रक्तको लाल बनाना और रगों या पेशियोंमें आक्सिजन पहुँचाना है। लौहकी कमीसे रक्तमल (अनीमिया) की बीमारी हो जाती है। हरी



तरकारी खासकर पालक और गोभीमें लौह अधिक पाया जाता है। क्या आपने कभी फिल्ममें पोपिये मल्लाहको लड़ाईपर जानेसे पहले डिब्बेका डिब्बा पकाया हुआ पालकका साग खाते देखा है? इसमें उसे लौहके सिवा विटामिन 'ए' और कैलशियम भी मिलता है। वैसे तो दूध हर तरहसे आदर्श भोजन है, किन्तु उसमें लौह क्षारकी कमी होती है। प्रकृतिदेवी नवजात शिशुओंके लिए इस बातमें बड़ी सावधानी रखती है। वह

जन्मके समयमें ही उन्हें सात महीनेके लिए उपयोगी लौह दे देती हैं।

भोजनके विभिन्न भागोंकी आलोचना ऊपर की जा चुकी है। इससे हमें मालूम हो गया कि हम जो सैकड़ों चीजें खाते हैं वे नीचे लिखी पाँच चीजोंमेंसे एक न एकमें शामिल की जायँगी—(१) चर्बी (२) कार्बोहाइड्रेट (३) प्रोटीन (४) विटामिन तथा (५) खनिज क्षार।



भोजन कितना करना चाहिये

३

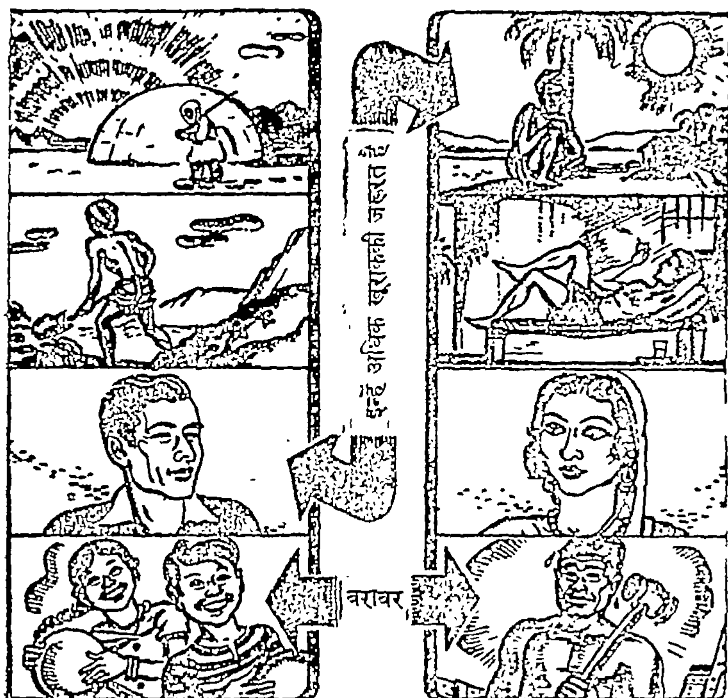
कितना खाना चाहिये इसपर बहुत मतभेद है। इस सम्बन्धमें प्रत्येक मनुष्यका अपना अलग-अलग विचार है। उदाहरणस्वरूप, युवकोंका विश्वास है कि वे अपने बुजुर्गोंसे अधिक खा सकते हैं।

इसके अलावा, किसी चीजका कितना खाना उचित है, यह बात प्रायः उस चीजके स्वाद और गन्धपर निर्भर करती है। यद्यपि हमलोग इस विषयमें अपनी अलग-अलग धारणाके अनुसार काम करते हैं, किन्तु विज्ञानने इस सम्बन्धमें ठीक-ठीक हिसाब लगाकर दिखा दिया है कि जीवित, स्वस्थ और शरीरको कार्यक्षम रखनेके लिए हमें यथार्थतः कितना भोजन करना चाहिये।

इस विषयमें सबसे पहले प्रयोग किया था, सोलहवीं शताब्दीमें इटलीके पादुआ शहरके एक चिकित्सा-विज्ञानके प्रोफेसरने। उनका नाम था सैंक्टोरियस। वह लटकते हुए तराजूके एक पलड़ेपर अपनी कुर्सी रखकर उसीपर बैठकर भोजन करते थे। तराजूके दूसरे पलड़ेपर वह अपने शरीरके वजनका और जितना वह खाना चाहते थे उतने वजनका बाट चढ़ा देते थे। जब पलड़ा उनकी ओर झुकने लगता था तब वह भोजन करना बन्द कर देते थे।

हममेंसे किस आदमीके लिए कितना भोजन जरूरी है, इस सवालका जवाब हमारी उम्र, हालत, काम और जलवायु जिसमें हम रहते हैं—के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है। उत्तरी ध्रुवके समीप ठण्ढे और बर्फीले स्थानमें रहनेवाले आदमीके लिए विषुवत् रेखाके गर्म प्रदेशोंमें रहनेवाले आदमीकी अपेक्षा अधिक भोजन आवश्यक है। एक ही देशमें और एक ही जलवायुमें रहते हुए भी एक आरामतलब और

आलसी आदमीकी अपेक्षा एक कठिन शारीरिक परिश्रम अथवा अत्यधिक दिमागी परिश्रम करनेवालेके लिए अधिक भोजनकी आवश्यकता है। गर्भावस्थाको छोड़कर साधारणतः स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंको अधिक भोजन चाहिये। एक सबल, परिश्रमका काम करनेवाला पूर्ण युवक जितना भोजन करता है उतने ही भोजनकी आवश्यकता एक खास उम्रमें उभड़ते हुए लड़के या लड़कीके लिए भी होती है।



ऐसी दशामें भोजनकी मात्राका निर्णय किस प्रकार किया जाय? कैसे इस बातका निर्णय करें कि किस आदमीको जरूरतसे कम या अधिक

भोजन मिला है? एक आदमीने चावल दाल खाया है, एकने तरकारी रोटी और एकने केवल एक ग्लास दूध पी लिया है; इन तीनोंमें किसका भोजन जरूरतसे कम या ज्यादा है? विज्ञानने हमारे लिए इन प्रश्नोंका उत्तर देना सम्भव बना दिया है। जिस तरह हम इञ्च, फुट, गज और मीलकी लम्बाई नापते हैं, छटाँक, पाव, सेर, मन आदिकी सहायतासे वजनका हिसाब करते हैं, कामका परिमाण घोड़ोंकी शक्तिसे नापते हैं, उसी तरह हम खाद्यसे उत्पन्न शक्ति कैलोरीजकी सहायतासे निर्णय कर सकते हैं। यह ऐसा साधारण मान है जिससे हम खाद्य-वस्तुओंके परिमाणको आसानीसे बदल सकते हैं।

कैलोरी क्या चीज़ है? आहार-विज्ञानके मुताबिक, कुछ कम-वेशी एक सेर पानीका ताप एक डिग्री सेण्टीग्रेडतक बढ़ानेके लिए जितनी गर्मीकी जरूरत पड़ती है, एक कैलोरी ठीक उसीके बराबर है। उत्तापका परिमाण नापनेके लिए जिस यन्त्रका आविष्कार किया गया है, उसे कैलोरीमीटर कहते हैं। किसी मुख्य खाद्य वस्तुकी कैलोरीका परिमाण जाननेके लिए उसको कैलोरीमीटरमें जलाना पड़ता है। कैलोरीमीटरके जिस बरतनमें खाद्य पदार्थ जलाया जाता है उसके चारो ओर पानी रहता है जो खाद्य वस्तुके जलनेसे गर्म हो जाता है और उसी (जलकी) गर्मीको नापनेसे खाद्यकी गर्मीका पता चलता है। आजकल ऐसे जटिल कैलोरीमीटर तैयार हुए हैं जिनके द्वारा उनके एक खानेमें किसी आदमी या जानवरको रखकर, उनके भीतरकी गर्मी नापी जा सकती है।

कैलोरीके हिसाबसे विभिन्न भोजनोंके भिन्न-भिन्न गुण हैं। एक चीजकी अधिक मात्रासे हम जितने बलका सञ्चय करते हैं, किसी दूसरी चीजकी अल्पमात्रासे भी हम उतने ही बलका संग्रह कर सकते हैं। एक ग्रामके नवें हिस्से ($\frac{1}{9}$) चर्बीमें एक कैलोरी शक्ति रहती है; किन्तु वही शक्ति प्रोटीन या कार्बोहाइड्रेटके $\frac{1}{4}$ ग्राम द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इसलिए यदि आपको मालूम हो कि आपने कितने ग्राम चर्बी, कितने ग्राम प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट अपनी खूराकमें खाये हैं तो चर्बीको नौसे और

प्रोटीन या कार्बोहाइड्रेटको चारसे गुणा करके यह जान सकते हैं कि आपने कितने कैलोरीजका इस्तेमाल किया है। दोनोंके गुणनफलको जोड़ कर हम यह जान सकेंगे कि हमने कितना खाना खाया है। इसी प्रकार यह भी बतलाया जा सकता है कि किसने कितना भोजन किया है और किसको कितना भोजन करना चाहिये।

यह हम पहले ही कह आये हैं कि उम्र, स्त्री-पुरुष भेद, दशा, जलवायु तथा कार्यश्रेणीके परिमाणसे ही भोजनके परिमाणकी जरूरत पड़ती है। इसीसे सबके शरीरकी रक्षाके लिए कैलोरीका परिमाण एकसा नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, कारखानेके मजदूरको ले लीजिये। एक साधारण मनुष्य जिसका वजन १५० पौण्ड (करीब दो मन) है, जितनी शक्ति खर्च करता है, उसकी पूर्तिके लिए उसे नीचे लिखी खूराककी जरूरत है :—

	कैलोरी
फी घण्टा ६५ कैलोरीके हिसाबसे ८ घण्टेकी नींदमें	५२०
,, २४० ,, ,, ,, के शारीरिक परिश्रममें	१९२०
,, १३५ ,, ,, ,, विश्राम (टहलना, हल्की कसरत, बैठना, खड़ा होना) में	१०८०
	३५२०

लड़ाईके जमानेमें जर्मनीमें एक कारखानेके मजदूरको ४००० कैलोरीजके परिमाणमें रोजाना राशन दिया जाता था ताकि वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर अधिकसे अधिक काम कर सके। जर्मनीने जिस समय बेलजियमपर कब्जा किया था, उस समय वहाँ फी आदमी २४०० कैलोरीजके परिमाणमें आहार देनेका प्रबन्ध हुआ था। संयुक्तराष्ट्र अमेरिकामें अन्दाज लगाया गया है कि वहाँ शहरमें रहनेवालोंके लिए प्रति व्यक्ति औसतन २५०० कैलोरी आहार प्राप्त है, किन्तु सैनिकोंको ४५०० कैलोरी आहार मिलता है।

एक भारतीयके लिए कितना राशन मिलना चाहिये? कामकी विभिन्नता और परिमाणका विचार करते हुए मोटे हिसाबसे प्रत्येक हिन्दुस्तानी पुरुषको रोजाना २५०० से ३५०० कैलोरी तक तथा स्त्रीको २१०० से २८०० कैलोरी तक आहार मिलना जरूरी है। इसलिए यदि औसतन प्रत्येक हिन्दुस्तानीके लिए रोजाना २६०० कैलोरी आहार मान लिया जाय तो इसे कोई अधिक नहीं कह सकता। यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि मशीनसे कूटने-पीसने, क्रय-विक्रय करने, इकट्ठा करने, पकाने-खाने और हजम करनेके दौरानमें आहारका कुछ अंश नष्ट हो जाता है। इसलिए मोटे हिसाबसे २८०० कैलोरी परिमाणमें आहारका प्रबन्ध करना ही हर प्रकारसे युक्ति-संगत होगा। इस प्रकार मध्यम श्रेणीके हिन्दुस्तानीके लिए सालभरमें दस लाख कैलोरीजकी जरूरत होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि ४० करोड़ भारतीयोंके लिए सालाना चार लाख अरब कैलोरीज जरूरी है।

पाठकगण सोचेंगे कि बात तो ठीक है, किन्तु इससे हमें क्या लाभ हुआ? व्यक्तिगत रूपसे प्रत्येक मनुष्यको कितना खाना चाहिये, यह बात तो अभीतक नहीं बतलायी गयी। हम कैलोरी नहीं खाना चाहते। कैलोरी तो शब्द ही बुरा मालूम होता है। बात सच है। इसलिए अब हम कैलोरीकी चर्चा बन्द करके वास्तविक आहारका ही वर्णन करेंगे—चांवल, गेहूँ, आलू, आम, दूध, मांस आदि खायी जानेवाली वस्तुओंकी ही आलोचना करेंगे।



खूराककी किस्में

४

अबतक हमने आहारके विभिन्न भागों और कैलोरीजके सम्बन्धमें बातें कही हैं, किन्तु अब हम खूराककी उन किस्मोंपर विचार करेंगे जिनसे हम जीवनी-शक्ति पाते हैं। वे कौन-कौनसी चीजें हैं जिन्हें खाकर मनुष्य गुजर कर सकता है ? यहाँ हम सिर्फ खास-खास खाद्य वस्तुओंकी चर्चा करेंगे। उन्हें चार किस्मोंमें बाँटा जा सकता है: (१) अनाज (२) साग-सब्जी और फल (३) दूध और उससे बनी चीजें (४) मांस, मछली और अण्डे।

भारतवर्षमें खाद्य वस्तुओंमें अनाज सर्वप्रधान है। भारत-भूमिमें जो चीजें पैदा होती हैं उनमें अनाज ही मुख्य है। यहाँ हर प्रान्तके लोग किसी न किसी अनाजपर जिन्दगी बसर करते हैं। इनमें दो तरहके अनाज हैं—गल्ला और दाल।

गल्लेमें चावल, गेहूँ, रई, जई, मक्का, जौ और दूसरे जैसे ज्वार, बाजरा आदि शामिल हैं। चावल चालीस करोड़की आबादीमेंसे चौबीस करोड़का प्रधान भोजन है। दक्षिण भारत, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, आसाम और काश्मीरमें लोग चावल ही खाते हैं। उत्तर भारतके लोगोंका मुख्य भोजन गेहूँ है। बाजरा प्रायः सब प्रान्तोंमें खाया जाता है किन्तु अधिकांश जगहोंमें उसका व्यवहार कम-बेशी मात्रामें चावल और गेहूँ मिलाकर किया जाता है।

रासायनिक क्रिया अथवा पौष्टिकताके लिहाजसे विभिन्न अनाजोंमें अधिक अन्तर नहीं होता। इन सबमें कार्बोहाइड्रेट प्रचुर परिमाणमें रहता है इसलिए कैलोरीके ख्यालसे इनका मूल्य बहुत अधिक है। किन्तु

चर्बीकी इनमें कमी होती है। प्रोटीनका अंश भी इनमें नहींके बराबर है। दूध और मांस आदि जान्तव खाद्योंमें प्रोटीन विशेष मात्रामें रहता है, दालोंमें भी प्रोटीन है किन्तु उतना अधिक नहीं। इन दोनोंके मुकाबिलेमें गल्लेको मध्य स्थान दिया जा सकता है। गल्लेमें कैलशियम अथवा चूने और लोहेकी मात्रा भी बहुत कम है यद्यपि इनमें फासफोरसकी इतनी कमी नहीं है। किन्तु ज्वार-बाजरा आदिमें कैलशियम विशेष मात्रामें रहता है—चावलका प्रायः बीस तीस गुना अधिक।

चावल एक तरहसे हमारा कौमी भोजन है क्योंकि इसपर हमारे देशके जितने लोग गुजर करते हैं वह अन्य सब गल्लोंपर बसर करने वाले लोगोंकी सम्मिलित संख्यासे भी अधिक है। यह हमारे शरीरको ताजा करनेके लिए बहुत अच्छा ईंधन है। जब हमें भूख लगती है तो भात खानेसे हम चंगे हो जाते हैं—हमारा पेट खूब भरा हुआ मालूम होता है। किन्तु दुर्भाग्यवश चावल उन विभिन्न पदार्थोंको जिनकी हमारे शरीरको जरूरत है, यथेष्ट परिमाणमें नहीं पहुँचाता। कारण यह कि इसमें विटामिन, लवण और मुख्यतः कैलशियमकी विशेष कमी रहती है।

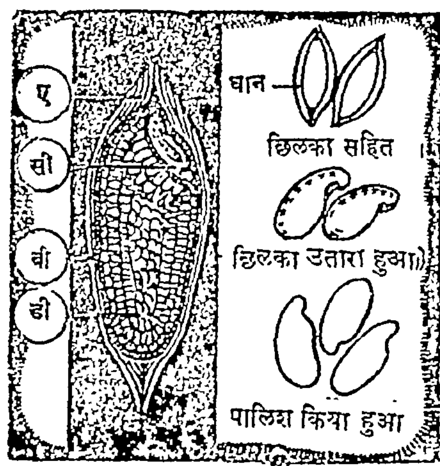
गेहूँ भी करीब-करीब चावलके ही समान है, किन्तु कुछ अंशोंमें चावलसे अच्छा है। गल्लोंमें इसके अन्दर सबसे अधिक प्रोटीन रहता है और चावलमें सबसे कम। गेहूँमें कैलशियम (चूना) और विटामिन 'बी' भी चावलकी अपेक्षा अधिक रहता है।

यदि हम सिर्फ चावल खाकर गुजर करना चाहें तो शरीरके लिए सब आवश्यक तत्त्व हमें प्राप्त न हो सकेंगे। दुर्भाग्यवश दक्षिण और मध्य भारतके बहुतसे लोग सिर्फ चावलपर ही निर्वाह करते हैं। हाँ, धनी लोग चावलके सिवा कुछ और गल्ला भी थोड़ी मात्रामें जरूर खाते हैं। गेहूँ खानेवाले उत्तर भारतके लोगोंकी अवस्था इतनी खराब नहीं है। क्योंकि वहाँ दक्षिण और मध्य भारतकी अपेक्षा दूध सस्ता मिलता

है। इसलिए वहाँके लोगोंको अपने भोजनमें कुछ पूर्णता लानेकी सुविधा है।

दुःखकी बात है कि इस देशमें चावल अपनी असली हालतमें खाया भी नहीं जाता। मशीनोंके कूटने और पालिश करनेसे इसमेंके प्रोटीन, विटामिन तथा लवण आदि मूल्यवान तत्व नष्ट हो जाते हैं। आइये देखें कि ये तत्व कैसे नष्ट होते हैं।

गल्लेके दानोंके चार हिस्से होते हैं। ऊपरकी भूसी, दानेके ऊपरका छिलका, भीतरका श्वेतसार तथा बीजका गूदा। यहाँ चावलके दानेका चित्र दिया जाता है जिसमें उसके चार हिस्सोंको क्रमशः ए, बी, सी और डी के रूपमें दिखलाया गया है। पहले यह देखना चाहिये कि हमारे खानेके लिए थालीमें आनेसे पहले इसको किन-किन अवस्थाओंमें होकर गुजरना पड़ता है। सबसे पहले भूसी (ए) अलग की जाती है। उससे कोई हानि नहीं होती, क्योंकि उसमें आहारके योग्य कोई पदार्थ नहीं होता। किन्तु कभी-कभी उसे चोकरमें मिलाकर पशुओंको खिलाया जाता है। यदि



हम भूसी छुड़ानेके बाद और कुछ न करें तथा उसे उसी अवस्थामें खायें तो उसके अन्दरकी सब शक्ति हमें मिल जायेगी। हाथसे छाँटे हुए चावलमें उसका मूल्यवान अंश बचा रहता है। भारतवर्षमें

लगभग ७३ फीसदी चावल हाथसे कूटा जाता है और २७ फीसदी मशीनोंसे। वहाँ उसे कई वार मशीनोंमेंसे होकर गुजरना पड़ता है और अन्तमें मशीन द्वारा ही उसपर पालिश की जाती है। फल यह होता है कि बाहरका छिलका (बी) और बीज (सी) दोनों ही नष्ट हो जाते हैं और केवल माँड़ीदार गूदा (डी) शेष रह जाता है। यह बहुत भारी मूर्खता है क्योंकि गूदेकी अपेक्षा उक्त पतले छिलके और बीजमें पोषक तत्वकी मात्रा अधिक होती है। प्रकृतिने गूदेमें केवल पौदा उगानेकी शक्ति दी है, वह मनुष्यके भोजनके योग्य नहीं है। मशीनकी छँटाई और पालिशसे उसका जो ऊपरी अंश नष्ट हो जाता है उसमें प्रोटीन, समूचे फासफोरसका आधा भाग और विटामिन 'बी' का ७५ फीसदी अंश रहता है।

किन्तु एक उपाय है जिसके द्वारा इस हानिसे बचत हो सकती है। वह उपाय है मशीनसे कूटने-छाँटनेके पहले धानको उबालनेकी प्रथा। यह तरीका सिर्फ भारतमें ही काममें लाया जाता है। इसमें पहले धान-को भिगोकर उबाला जाता है। इस रीतिसे धान उबालनेके कारण उसकी भूसी चिटक जाती है और उसका कूटना आसान हो जाता है। जान पड़ता है कि हाथसे कूटनेकी मिहनत कम करनेके लिए ही यह प्रथा चली थी। किन्तु इस प्रथासे एक और बड़ा लाभ होता है। उबालनेसे बाहरी महीन छिलके और बीजके मूल्यवान् तत्व जैसे विटामिन 'बी' भीतरके गूदेमें फैल जाते हैं इसलिए जब वह उबाला हुआ धान मशीनसे कूटा जाता है तो भी उसके मूल्यवान् पदार्थ उसमें शेष रह जाते हैं। धानकी कुल पैदावारका ५८ फीसदी धान उबाल लिया जाता है अतः यह प्रथा भारतवर्षके लिए बहुत ही लाभदायक है। इस प्रथाके कारण हम जिस कठिनाईसे बच गये हैं उसका अनुमान किया जा सकता है। मद्रास प्रान्तके उत्तरी सरकारके इलाकोंकी दशासे सन् १९३८ में मद्रास प्रान्तमें करीब २६ हजार आदमियोंको बेरीबेरी (जिसके सम्बन्धमें पीछे कहा जा चुका है कि यह रोग विटामिन 'बी' की कमीसे

होता है) की बीमारी हुई थी जिनमें ९८ फीसदी लोग केवल एक जिलेके रहनेवाले थे। इसका कारण सिर्फ यह है कि उक्त जिलेके लोग मशीनसे कूटा हुआ केवल अरवा चावल खाते हैं—किन्तु और जगहोंमें सेल्हा चावल खानेकी प्रथा है।

सिर्फ मशीनमें कुटाई-छँटाईके कारण ही चावलका मूल्यवान तत्व नष्ट नहीं होता। सफाईके खयालसे हम चावलको कई बार धो डालते हैं जिससे अरवा चावलमेंका १० फीसदी प्रोटीन, ७५ फीसदी लोहा, करीब आधा फासफोरस और ६० फीसदी विटामिन 'बी' बह जाता है; और सेल्हा चावलमेंका सिर्फ ८ फीसदी। इसके बाद चावल पकानेके लिए आँचपर चढ़ाया जाता है। पकाते समय जरूरतसे ज्यादा पानी भर दिया जाता है और जब चावल पकनेपर आ जाता है तब वह पानी माँड़के रूपमें निकालकर फेंक दिया जाता है जिसके साथ विटामिनका बचा खुचा अंश भी निकल जाता है। माँड़के साथ निकल जानेवाले विटामिनको बचाया जा सकता है यदि चावल पकनेभरके लिए पानीमें पकाया जाय अथवा माँड़को भोजनकी अन्य रसेदार चीजोंमें मिला दिया जाय।

मशीनमें पीसनेपर गेहूँकी भी यही दशा होती है। गेहूँके मोटे आटेकी जो रोटियाँ बनती हैं उनमें पोषक तत्त्व रहता है। लेकिन दुर्भाग्यवश बारीक पिसे हुए आटे (मैदे) की रोटियाँ खानेकी आदत देशमें क्रमशः बढ़ती जा रही है।

अनाजकी दूसरी किस्म है दाल। यह भोजनकी दृष्टिसे गल्लेसे कुछ भिन्न होती है। दालमें शरीरको बनानेवाला तत्त्व (जैसे प्रोटीन) अनाजकी तुलनामें अधिक होता है। इसीसे उसे अंग्रेजीमें 'गरीबोंका गोश्त' कहा जाता है। इसमें किसी-किसी विटामिनकी मात्रा अधिक होती है। इसलिए यह जरूरी है कि मशीनका कूटा हुआ चावल खानेवालों खासकर बच्चोंके, भोजनमें दाल भी शामिल की जाय। अरहर-की दाल चनेकी तरह देशके हर हिस्सेमें खायी जाती है। दालके प्रकरण-

में ही सोयाबीन भी रखा जा सकता है, जिसका भारतवर्षमें नया-नया प्रचलन हुआ है। इसकी पैदावार प्रति एकड़ सब अनाजोंके मुकाबिलेमें अधिक होती है। खाद्य विशेषज्ञोंका कहना है कि एक पौण्ड सोयाबीनमें ढाई पौण्ड गोश्त या २८ अण्डोंके बराबर प्रोटीन होता है। इसके सिवा इसमें चर्बी भी अधिक होती है और विटामिन 'ए' का भी कुछ अंश होता है। इसलिए इसे अनाजके साथ मिलाकर खाना बहुत लाभदायक हो सकता है।

दालमें अंकुर निकालकर खानेसे उसका गुण बहुत बढ़ जाता है। ऐसा करनेसे दानेके अन्दर और कोपलोंमें विटामिन 'सी' पैदा हो जाता है। अंकुर निकालनेकी विधि यह है—पहले दालका खड़ा दाना चौबीस घण्टे तक पानीमें भिगो दिया जाय और फिर उसे गीली मिट्टी या गीले कम्बलपर फैला दिया जाय और उसे गीले कपड़े या बोरेसे ढँक दिया जाय और उसपर थोड़ी-थोड़ी देरके बाद पानी छिड़का जाय। एक दो दिनके बाद अंकुर निकल आयेंगे। इन्हें या तो कच्चा या अधिकसे अधिक दो मिनटतक पानीमें पकाकर खाया जाय।

तरकारी या फलसे हमारे शरीरको अधिक ईंधन या शक्ति नहीं मिलती। यही कारण है कि केवल तरकारी खानेसे एक भूखे आदमीका पेट नहीं भरता। लेकिन इससे एक दूसरा जरूरी काम अवश्य निकलता है। इससे शरीरको विटामिन और लवण मिलता है। बहुत सी तरकारियोंमें (कोरोटीनकी शकलमें) विटामिन 'ए' तथा 'सी' का यथेष्ट भाग होता है जो कि अनाजोंमें नहीं होता। इसमें क्षार, जैसे चूना, सोडियम और क्लोरीन पर्याप्त मात्रामें रहते हैं। यही सबब है कि दूधकी भाँति तरकारियोंकी गिनती भी रक्षित भोजनमें की जाती है। तरकारियोंका दूसरा काम है पाकस्थलीको चालू रखना। तरकारियोंकी बनावटमें जो सेलुलोज रहता है उसीकी सहायतासे वे यह काम करती हैं। वैसे तरकारीका सब अंश पुष्टिकारक नहीं है; वह शरीरके अन्दर रखी भी नहीं जा सकती। किन्तु अधिक मात्रामें खानेसे वह पाखाना साफ

लानेमें मदद पहुँचाती है। इसकी कमीसे कब्जकी शिकायत हो सकती है।

तरकारियाँ तीन किस्मकी होती हैं—हरी पत्तियोंवाली तरकारी, कन्द और मूल तथा नाना प्रकारकी अन्य तरकारियाँ। हरी पत्तियोंवाली तरकारीको साग कहा जाता है—इसमें पात-गोभी, पालक, सलाद तथा गुल-अशर्फी आदि शामिल हैं। इनके भीतर काफी तादातमें विटामिन रहते हैं; खास तौरपर (केरोटीनकी शकलमें) विटामिन 'ए' और विटामिन 'सी'। इनमें चूना भी काफी होता है जिसकी मनुष्य-शरीरमें सबसे अधिक जरूरत रहती है। चूँकि चावलमें चूनेकी कमी होती है, इसलिए चावल खानेवालोंके लिए खास तौरपर हरे पत्तेवाली तरकारियोंकी जरूरत है। इधर कई वर्षोंसे पश्चिमी देशोंके लोग खासकर अमेरिकावाले, हरी पत्तियोंवाली तरकारियोंको अत्यन्त लाभदायक बताने लगे हैं। किन्तु चीन देशके लोग हमेशासे इसके पक्षमें हैं और इसका व्यवहार अधिक करते रहे हैं। हरे पत्तोंके सागसे वे पशुओंसे प्राप्त होनेवाले भोजन जैसे दूध, आदिकी कमीकी पूर्ति करते रहे हैं।

जब तरकारियाँ देरतक पकायी जाती हैं तो विटामिन 'सी' काफी तादादमें नहीं रह जाता—उसका अधिकांश भाग नष्ट हो जाता है। लेकिन दूसरी ओर बिना पकी हुई कच्ची हरी तरकारियोंके खानेसे भी शरीरमें बीमारीके कीड़ोंके पहुँच जानेका डर रहता है। इसलिए उसे खूब अच्छी तरह धो लेनेके बाद खाना उचित है।

कन्द और मूलकी तरकारियोंमें आलू, शकरकन्द, गाजर, चुकन्दर, मूली और रतालू शामिल हैं। इनमें आलूका व्यवहार सबसे अधिक होता है। आलूके अन्दर तीन चौथाई तो पानी होता है और शेष श्वेतसार। इसके अन्दर प्रोटीनका भाग बहुत कम होता है। लेकिन कुछ विटामिन ऐसे होते हैं जिनके द्वारा दूसरी कमीकी पूर्ति हो जाती है। घनी आबादी-वाले देशके लिए आलू बहुत मूल्यवान चीज है। क्योंकि वह सस्ता है और अधिक तादादमें पैदा होता है। एक एकड़ जमीनमें उत्पन्न गेहूँसे

जितने आदमियोंको भोजन मिल सकता है उससे दूने आदमियोंको एक एकड़ जमीनमें उत्पन्न आलूसे भोजन मिल सकता है। गाजर और शलजम, गाँठ-गोभी आदि तरकारियोंमें भी आलूके समान गुण हैं। इन सबमें श्वेतसार और विटामिन 'सी' बहुतायतसे होता है। किन्तु प्रोटीनकी कमी रहती है। गाजरमें केरोटीन (प्रो-विटामिन 'ए') भी होता है।

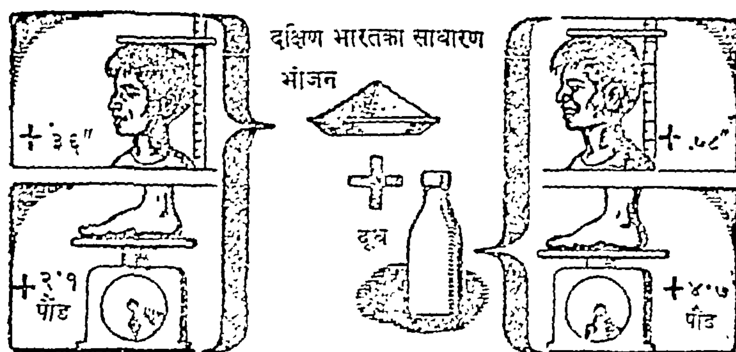
दूसरी तरकारियोंमें बैगन, डिड़सी, दूधी और भिण्डी आदि हैं।

फल भी तरकारियों ही जैसे होते हैं। उनसे विटामिन तथा क्षार प्राप्त होते हैं। तरञ्जी फल (नारङ्गी और नीबू) में विटामिन 'सी' होता है। उनमें कुछ लोहा भी होता है। फल निस्सन्देह पूर्ण भोजन नहीं होते और किसीको भी केवल फलोंपर ही जीवन व्यतीत करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। एक सेव रोजाना खानेसे सम्भव है कभी डाक्टरकी जरूरत न पड़े, लेकिन यदि बहुतसे सेव रोजाना खाये जायँ और उनके साथ कोई दूसरा भोजन न किया जाय तो डाक्टरको अवश्य बुलाना पड़ेगा।

सर्व-गुण-सम्पन्न यदि कोई भोजन है तो वह दूध है। इसके अन्दर प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन 'ए' 'बी' 'सी' और लवण, जैसे चूना और फासफोरस आदि पर्याप्त मात्रामें रहते हैं। छोटे बच्चों और बालकोंके लिए दूध खास तौरपर बहुत ही लाभदायक होता है। यह सच है कि गाय, भैंस और बकरी आदि जानवरोंका दूध मनुष्यके दूध जैसा नहीं है, परन्तु ऐसे बच्चोंके लिए जिनको माँका दूध नहीं मिलता यह दूध करीब करीब उसका स्थान ले सकता है। किस्से-कहानियोंमें तो यह भी कहा गया है कि दुधमुँहे बच्चोंको पैदा होनेके बादसे भेड़ियेके दूधपर पाला जा सका जैसे रोमोलस और रेमसको और किपलिंगकी 'जंगल बुक' में मोगलीको। आजकल बनावटी मिलावटसे इस बातकी चेष्टा की जा रही है कि ऐसा दूध तैयार किया जाय जो गुणके हिसाबसे बिलकुल मनुष्यके दूध जैसा हो।

दूधपर केवल दूधमुँहे बच्चे ही निर्भर नहीं रहते। पाठशाला जाने-

वाले बालकोंके भोजनमें दूध शामिल कर देनेसे उनमें विशाल परिवर्तन होने लगता है। इस बातका पता सारे संसारको लगा है खासकर हमारे देशको। अभी कुछ ही दिन पहले दक्षिण भारतमें कोनूरके समीप न्यूट्रिशन रिसर्च लेबोरेटरीजके अधिकारियोंने कुछ बालकोंपर तीन महीनेतक परीक्षण किया था। इन बालकोंकी दो टोलियाँ बनायी गयी थीं। एक टोलीको दक्षिण भारतका साधारण भोजन दिया जाता था और दूसरी टोलीको ठीक उसी तरहके साधारण भोजनके सिवा आठ औंस मक्खन निकाला हुआ दूध भी दिया जाता था। मखनिया दूध उस दूधको कहते हैं जो मक्खन निकालनेके बाद बाकी रह जाता है जिसमेंसे चर्बी और विटामिन 'ए' का कुछ भाग निकला रहता है। तीन महीनेके बाद यह मालूम हुआ कि पहली टोलीके बच्चोंमें (अर्थात् उन बच्चोंकी टोलीमें जिन्हें उस प्रान्तका साधारण भोजन दिया जाता था) औसतन शरीरकी बाढ़ ०.३६ इञ्च रही, और दूसरी टोलीकी ०.५८ इञ्च। इसी तरह औसतन पहली टोलीका वजन २.१ पौण्ड तथा दूसरी टोलीका ४.७ पौण्ड बढ़ा था।



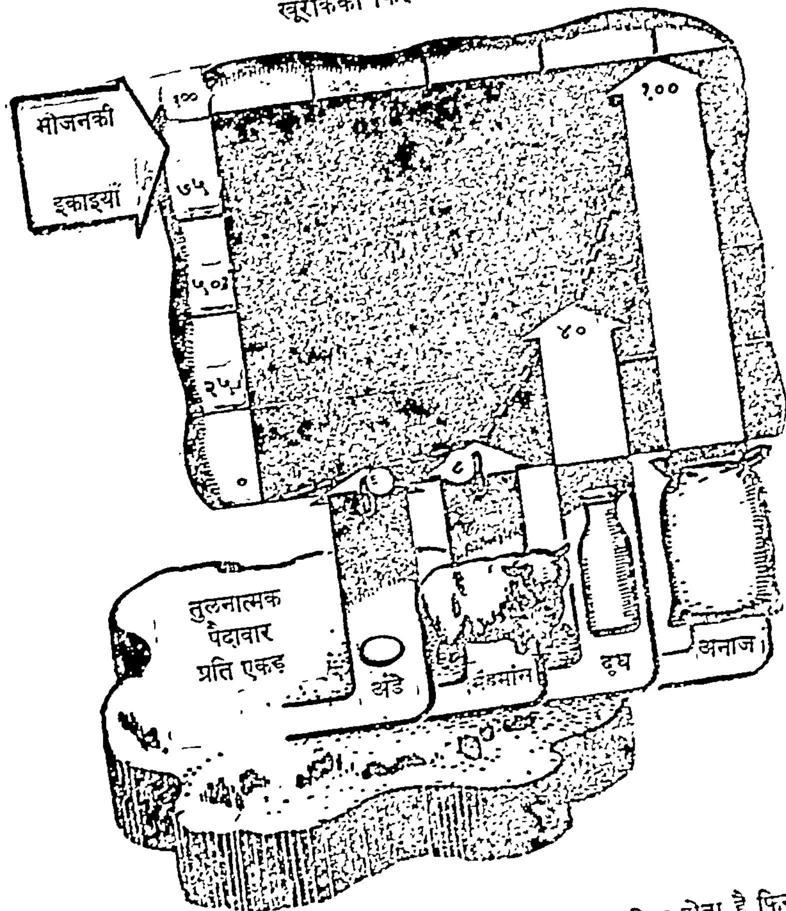
यही कारण है कि इंग्लिस्तानमें स्कूल जानेवाले लाखों बच्चोंको कुछ सालसे रोजाना मुफ्त या सस्ते दामोंपर दूध पिलाया जाता है। इसमें कोई

सन्देह नहीं कि ये म्युनिसिपैलिटियाँ स्कूलोंमें बच्चोंको मुफ्तमें दूध देनेमें जनताका जो रुपया खर्च करती हैं वह आगे चलकर अपने इस खर्चका फल अपने तमाम दूसरे खर्चोंकी अपेक्षा अधिक उत्तम पायेंगी।

गोश्त, मछली और अण्डे संसारके बहुतसे लोगोंका, खासकर पश्चिमी यूरोप और अमेरिकाके लोगोंका साधारण भोजन है। हमारे देशमें भी ये चीजें खायी जाती हैं किन्तु विशेष रूपसे नहीं। इसका कारण यह है कि भारतवर्ष अधिकतर शाकाहारी है।

ऐसा क्यों है? संसारमें हर जगहके अनुभवसे यह बात साबित हो गयी है कि एक एकड़ जमीनकी सहायतासे मवेशी, भेड़, बकरी और मुर्गियाँ पालकर उनके मांससे जितने आदमियोंकी खूराक पूरी की जा सकती है उतनी ही जमीनमें अनाज बोकर उसकी अपेक्षा अधिक आदमियोंकी खूराक पूरी की जा सकती है। इस प्रकार देखा जाता है कि अमेरिकामें एक एकड़ जमीनपर जब अनाज बोया जाता है तो उससे भोजनकी एक सौ इकाइयाँ हासिल होती हैं, लेकिन जब दूधके लिए मवेशी पाले जाते हैं तो चालीस इकाइयाँ, मांसके लिए मवेशी पाले जाते हैं तो आठ इकाइयाँ और अण्डोंके लिए मुर्गियाँ पाली जाती हैं तो केवल छ इकाइयाँ हासिल होती हैं। इसलिए भारतवर्षका, जो संसारमें करीब-करीब सब देशोंसे अधिक घना आबाद है, शाकाहार या अन्नपर जीवन व्यतीत करना जरूरी है। इसके अतिरिक्त वह और कुछ कर ही नहीं सकता। इससे भी बढ़कर है हिन्दू धर्मका संस्कार। हिन्दू शास्त्रके विधानमें मांस खाना मना है। जीव-वध करनेमें हिन्दू उदासीन हैं। इससे एक अजीब धार्मिक भावना उत्पन्न हो गयी है; अर्थात् यह कि हमारे देशमें समस्त संसारके मुकाबिलेमें सबसे अधिक पशु मौजूद हैं जिनको काफी चारा नहीं मिलता; फिर भी हमारी जमीनकी पैदावारका अधिकांश भाग वे चट कर जाते हैं।

बकरीका मांस और अन्य प्रकारके जानवरोंका मांस उत्तम खूराक



जरूर है क्योंकि उनमें प्रोटीनका भाग बहुत अधिक होता है फिर भी यह विश्वास नहीं होता कि वह हमारे देशके जनसाधारणका भोजन बन सकेगा।

लेकिन मछलियोंके मांसके सम्बन्धमें इस प्रकारकी आपत्ति ठीक नहीं हो सकती, क्योंकि हमारे पास मछलियोंका एक विशाल भण्डार

उन सागरोंमें है जो हमारे विस्तृत किनारोंको घेरे हुए हैं। हमारी नदियों-में भी मछलियाँ भरी पड़ी हैं। उन्हें हम आसानीसे पा सकते हैं।

मछली ताजी और सूखी दोनों हालतोंमें बहुत अच्छा भोजन है। उसमें प्रोटीन तथा विटामिन 'ए' और 'डी' और फासफोरसका अच्छा भण्डार विद्यमान रहता है। छोटी मछलीके अन्दर यदि वह टुकड़े-टुकड़े करके खायी जाय तो चूना भी बहुत मिलता है। चावल खानेवालोंके भोजनमें इन्हीं तत्वोंकी सबसे ज्यादा कमी होती है, इसलिए भारतवासियों-के लिए मछलीकी खास तौरपर जरूरत है। कॉड या शार्क मछलीके कलेजेके तेलकी तरह अन्य मछलियोंके कलेजेका तेल भी दवाओंके काम आता है—क्योंकि इसके अन्दर विटामिन 'ए' और 'डी' इकट्ठा रहता है जो साधारण खाद्य वस्तुओंमें प्रायः नहीं होता।

आमिष आहारमें अण्डा भी मुफीद चीज है। कुछ लोगोंका ख्याल है कि सब तत्वोंकी पूर्णताके लिहाजसे दूधके बाद ही अण्डोंका स्थान है। जिस तरह दूध बच्चोंके शरीरको सब जरूरी तत्व देता है उसी तरह अण्डे भी चिड़ियोंके बच्चोंके लिए भोजनके सब तत्व जुटाते हैं। दूधकी अपेक्षा अण्डोंमें विटामिन 'ए' और लौहकी मात्रा अधिक होती है किन्तु चूना उसकी अपेक्षा इसमें कम रहता है। जो हो, यह हम पहले कह आये हैं कि अण्डा बहुत मँहगा पड़ता है। अण्डोंके पैदा करनेमें भोजनके खयालसे बहुत अधिक खर्च पड़ता है।



सन्तुलित भोजन

५

किताबों और अखबारोंमें अकसर हम यह पढ़ते हैं कि भोजनका सन्तुलित होना जरूरी है। इसका ठीक-ठीक मतलब क्या है? तीसरे परिच्छेदमें हम इस बातपर विचार कर चुके हैं कि हमें प्रतिदिन कितना खाना चाहिये। लेकिन एक किस्मके भोजनसे, चाहे वह चीनी हो, मांस हो या चावल हो, पूरा-पूरा भोजन करनेकी समस्या हल नहीं होती। एक अंग्रेजी डाक्टरने तजरबा करनेके लिए एक मास तक केवल चीनी खाकर जीवन व्यतीत करना चाहा। परिणाम यह हुआ कि बेचारा मर गया। यह आवश्यक है कि कैलोरीकी जरूरी मात्रा, भोजनके समस्त आवश्यक भाग, अर्थात् प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, लवण तथा विटामिन उपयुक्त परिणामोंमें प्राप्त किये जायँ। भोजनकी इस व्यवस्थाको सन्तुलित भोजन कहते हैं।

सन्तुलित भोजनके सम्बन्धमें प्रत्येक खाद्य विशेषज्ञके भिन्न-भिन्न विचार हैं। आइये देखें कि ब्रिटिश-स्वास्थ्य-मन्त्रिमण्डल एडवाइजरी कमेटीका इस सम्बन्धमें क्या फैसला है। इस कमेटीने ऐसे भोजनको उत्तम बतलाया है जिससे ३००० कैलोरी शक्ति प्राप्त हो सके और वह शक्ति निम्नलिखित पदार्थों द्वारा प्राप्त हो—१०० ग्राम प्रोटीन जिसमें कमसे कम एक तिहाई पशुओंसे उत्पन्न प्रोटीन हो, १०० ग्राम चर्बी, ४०० ग्राम कार्बोहाइड्रेट और लवण तथा विटामिनकी कुछ मात्रा।

	अन्तर्राष्ट्रीय संयुक्तराष्ट्र कानफरेन्स	भारतवर्ष	
		शाकाहार	मांसाहार
	औंस	औंस	औंस
अनाज (जिसमें गेहूँ का उपयुक्त परिमाण सम्मिलित हो) ...	१०.०	२०.०	२०.०
दाल	...	३.०	३.०
तरकारियाँ (मूल और कन्द)	८.०	१२.०	८.०
,, (अन्य तरहकी जिनमें हरे पत्तेकी तरकारियाँ सम्मिलित हैं)	८.४		
फल	५.०	२.०	२.०
चर्बी और तेल...	२.६	२.०	१.०
दूध	२१.०	८.०	८.०
चीनी	१.५	२.०	२.०
मांस, मछली और अण्डे	५.०	...	४.०
जोड़	६१.५	४९.०	४८.०
५ प्रतिशत नष्ट	३.०	२.५	२.५
खालिस	५८.५	४६.५	४५.५

बगलके नक्शेमें तीन सन्तुलित भोजनका हिसाब दिया गया है। पहले खानेका हिसाब, संयुक्त राष्ट्रोंने भोजन और कृषिपर जो कान्फरेन्स की थी उसकी रिपोर्टसे लिया गया है। भोजनका एक पैमाना नमूनेके तौरपर दिखलाया गया है जिसका अनुकरण किया जा सकता है। दूसरे खानेमें सन्तुलित निरामिष भोजनकी तालिका दी गयी है जिसके सम्बन्धमें विशेषज्ञोंका खयाल है कि यह भारतवर्षके लिए उपयुक्त है। तीसरे खानेमें ठीक उसीकी समतामें एक मांसाहारीका हिसाब दिया गया है।

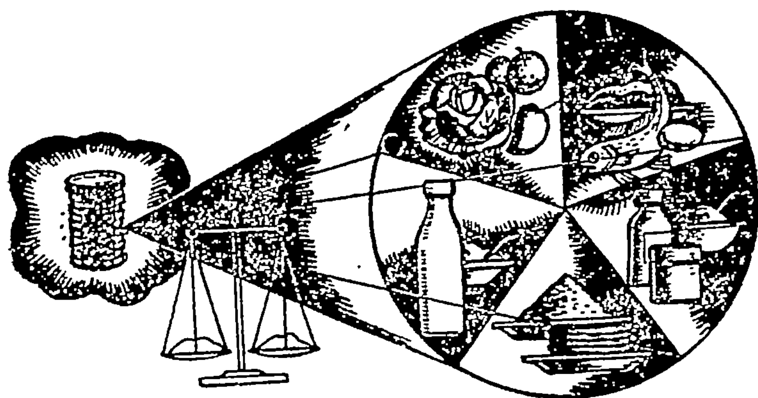
साथकी तालिकासे आपको मालूम होगा कि संयुक्त राष्ट्रोंकी रिपोर्टसे उद्धृत खूराक अन्य दोनों खूराकोंसे अधिक पौष्टिक है। इसमें विभिन्नता और सन्तुलन भी अधिक है। कुछ हदतक इसकी वजह यह है कि भारतवर्षकी जलवायुमें हमें शायद इतने अधिक भोजनकी जरूरत नहीं है जितनेकी ठण्ढे देशोंमें रहनेवालोंको होती है। इसके अतिरिक्त हमलोगोंके शरीरका वजन और शरीर भी उनकी अपेक्षा हल्का होता है। संयुक्त राष्ट्रोंके सम्मेलनकी रिपोर्ट चूँकि सारे संसारकी ओर लक्ष्य रखकर तैयार की गयी है इसलिए उसमें प्रत्येक जलवायु तथा हर किस्मके लोगोंका खयाल रखा गया है। उसमें बतलायी हुई खूराक किसी जाति-विशेषकी खूराक नहीं है। इस बड़े अन्तरका एक दूसरा कारण यह है कि भारतवर्ष पुश्त दरपुश्तसे कम भोजन करनेके लिए विवश रहा है तथा जो लोग हमारे लिए भोजनकी मात्रा निर्धारित करते हैं वे अपने अनुमानसे स्वभावतः कुछ कम ही करते हैं।

एक अमेरिकन खाद्य विशेषज्ञने आहारके विषयमें जो उपदेश दिया है वही सम्भवतः सबकी अपेक्षा अधिक मान्य है:—

अपने भोजनको पाँच हिस्सोंमें बाँटो;

एक पञ्चमांश तरकारियों और फलोंके लिए,

एक पञ्चमांश दूध, मठा, मक्खन और घीके लिए,
एक पञ्चमांश मांस, मछली और अण्डेके लिए,
एक पञ्चमांश रखना होगा अनाजके लिए,
शेष एक पञ्चमांश चर्बी, चीनी, मसाले और अन्य प्रकारकी चीजोंके लिए।

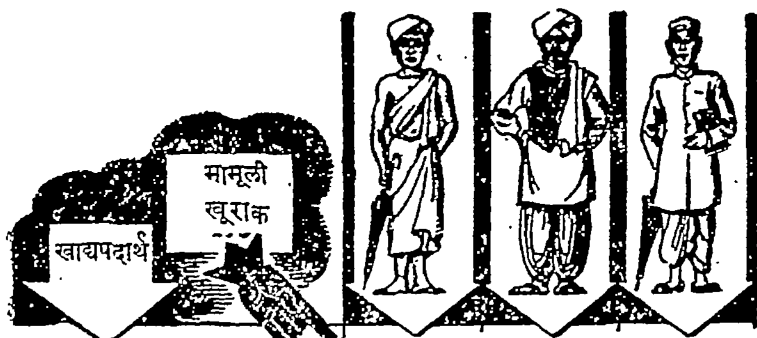


भारतीय भोजन

६

अबतक हमने उस भोजनके सम्बन्धमें विचार किया जो हमको खाना चाहिये। हमने इस बातकी कोई चिन्ता नहीं की कि आज इस किस्मका भोजन मिलना हमारे लिए सम्भव है या नहीं। अबतक हम आकाशमें ही सैर करते रहे। आइये, अब जरा ठोस जमीनपर उतरकर देखें कि हमें क्या खाना चाहिये और हम वास्तवमें क्या खा रहे हैं। इस आलोचनासे हमें ठीक उसी तरहका गहरा धक्का लगेगा जैसे ऊबड़-खाबड़ जमीनपर उतरनेकी चेष्टा करनेपर किसी हवाई जहाजको धक्का लगता है। लेकिन क्या किया जाय, मजबूरी है। हमें वास्तविकताका सामना तो करना ही पड़ेगा।

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि भारतवर्ष प्रधानतः निरामिषभोजी देश है। यहाँ वे लोग भी व्यवहाररूपमें शाकाहारी ही हैं जिन्हें मांसाहार करनेमें कोई धार्मिक अथवा अन्य रुकावटें नहीं हैं। इसका कारण यह है कि अनाज पैदा करनेमें मांस और अण्डे पैदा करनेकी अपेक्षा कम खर्च पड़ता है। समुद्रके किनारोंके प्रान्तोंमें मछलियाँ आसानीसे मिलती हैं; इसलिए वहाँके निवासी शाकाहारके साथ कुछ मछली भी खाते हैं। नीचे तीन मामूली प्रकारके भोजनका हिसाब दिया गया है। उनमें पहला भोजन दक्षिण भारतके लोगोंका है जिसे गरीब श्रेणीके बालिग खाते हैं, दूसरे खानेमें उत्तर भारतके गरीब श्रेणीके बालिगोंका भोजन है और तीसरे खानेमें बम्बई शहरके निम्न मध्यवित्त गुजरातियोंका भोजन दिया गया है—



	औंस	औंस	औंस
चावल	१६·०	२·५	३·७
गेहूँ	...	१४·९	५·१
ज्वार बाजरा	...	...	१·५
दाल	१·०	१·४	२·२
तरकारियाँ	२·५	६·७	५·६
दूध और दूधसे बननेवाली चीजें ... (घी सहित) ...	१·५	३·४	१०·८
चर्बी और तेल ...	०·५	...	१·०
चीनी और गुड़ ...	...	०·९	१·६
मसाले (अचार, मुरब्बा आदि) ...	०·५	०·२	०·५
मांस, मछली और अण्डे ...		०·५	...
जोड़	२२·०	३०·५	३२·०
नष्ट हो जानेवाला अंश ५ प्रतिशत	१·०	१·५	१·५
खालिस	२१·०	२९·०	३०·५
शक्ति (कैलोरीज)	१८२०	२१८०	१९६०

यदि आप इन तीनों खानोंका मुकाबिला करेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि दक्षिण भारतके लोगोंका प्रधान भोजन चावल है और

उत्तर भारतके लोगोंका गेहूँ। बम्बई शहरमें गुजरातियोंका भोजन मिला-जुला है क्योंकि उसमें गेहूँ और चावल दोनों सम्मिलित हैं और कुछ मात्रा दूध और दूधसे उत्पन्न पदार्थोंकी भी है जो अन्य दोनोंके लिए अप्राप्य है। इसके कुछ कारण तो भौगोलिक हैं और कुछ कारण गुजरातियोंकी उक्त दोनोंकी अपेक्षा सम्पन्नता है। आयका प्रभाव भोजन-पर किस तरह पड़ता है, यह हम आगे बतलाएँगे।

पिछले परिच्छेदमें हमने जाँचका जो परिणाम रखा था हिसाब लगाने-पर उसके साथ मिलान करनेपर ऊपरके तीनों खानोंमेंसे एक भी नहीं टिकता। यदि आप उसे दोबारा देखेंगे (पृष्ठ ३४) तो आपको मालूम होगा कि शाकाहार और मांसाहार करनेवालोंके भोजनका परिमाण प्रतिदिन ४६ औंस होना चाहिये। लेकिन पिछले पृष्ठपर जिन भोजनोंका उल्लेख है उनका परिमाण २० और ३० औंससे अधिक नहीं है। इनमेंसे जो सर्वोत्तम भोजन है वह आवश्यक भोजनके सिर्फ दो तिहाई भागको जुटाता है और शेष दोनों प्रकारके भोजन इससे भी बहुत कम।

इससे अनुमान किया जा सकता है कि प्रत्येक भारतीयको पर्याप्त और सन्तुलित भोजन प्राप्त करनेके लिए हमें बहुत कुछ करना बाकी है। फिर जब इन भोजनोंका मुकाबिला उस भोजनसे किया जाता है जिसे हमने संयुक्त राष्ट्रोंके खाद्य-कान्फरेन्सकी रिपोर्टसे दर्ज किया है तो इतना विशाल अन्तर दिखायी देता है कि उसे देखकर दिल बैठ जाता है।

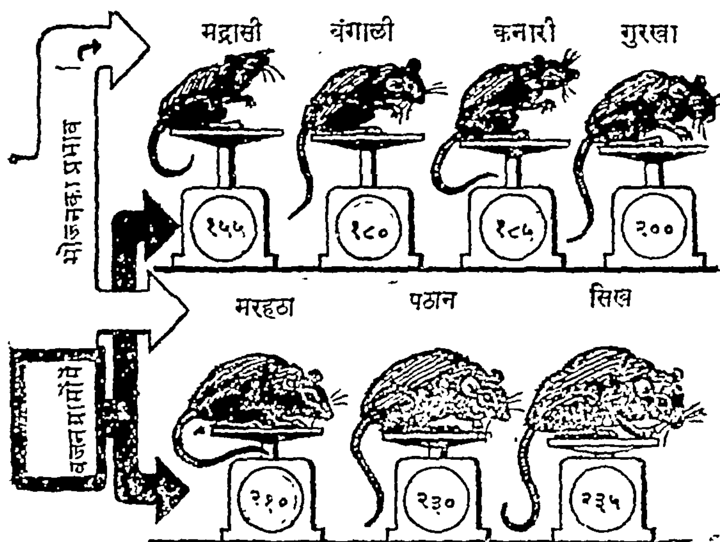
एक दूसरी बात जो इन नक्शोंके देखने और पिछले परिच्छेदसे उनका मुकाबिला करनेसे मालूम होती है, वह यह है कि हम न केवल बहुत कम भोजन करते हैं बल्कि हमारे भोजनका बहुत अधिक भाग एक ही किस्मका होता है और दूसरी किस्मोंका हिस्सा बहुत कम होता है—जैसे, दक्षिण भारतके भोजनमें चावलका अंश जरूरतसे ज्यादा है। इसी तरह हमारे भोजनमें श्वेतसारका भाग, सस्ता होनेके कारण, अधिक होता है। लेकिन इन भोजनोंमें उन विशेषताओंकी बहुत कमी होती है जो शरीरकी उन्नतिमें सहायक होती हैं और क्षीण स्नायुओंको शक्तिशाली

बनाती हैं। जैसे—प्रोटीन, और इसी तरह खाद्यका उचित सञ्चालन करनेवाले भाग जैसे विटामिन और लवणकी भी कमी होती है। इसका कारण यह है कि हमारे भोजनमें मांस बहुत कम होता है, दूधकी बहुत कम मात्रा होती है और तरकारियाँ और फल भी काफी नहीं होते। क्या यह दुःखकी बात नहीं है कि वह लोग जो शाकाहारी कहलाते हैं उनके भोजनमें तरकारीका आधा हिस्सा भी शामिल नहीं होता ?

दूधकी कमी भारतीय भोजनकी सबसे बड़ी भयावह बात है। इस सम्बन्धमें भी उत्तर भारतकी अवस्था दक्षिण भारतसे कहीं अच्छी है। सन् १९४३ में दूधकी बिक्रीके बारेमें जो विवरण प्रकाशित हुआ था, उसमें विभिन्न प्रान्तोंमें दूध और दूधसे उत्पन्न पदार्थों (मक्खन, घी वगैरह) का व्यवहार, प्रति मनुष्य, औसतन निम्न प्रकार है—

सिन्ध	१८.० औंस	हैदराबाद	३.९ औंस
पञ्जाब	१५.२ ,,	मद्रास	३.७ ,,
युक्तप्रान्त	७.० ,,	उड़ीसा	३.४ ,,
सीमाप्रान्त	६.८ ,,	बङ्गाल	२.८ ,,
बम्बई	५.५ ,,	मध्यप्रान्त	१.८ ,,
मैसूर	४.४ ,,	आसाम	१.३ ,,
बिहार	४.२ ,,		

दूधके वितरणकी असमानता तथा गेहूँ और चावलके भोजनके इस अन्तरके ही कारण उत्तर भारत तथा दक्षिण भारतके लोगोंके शरीर-गठनमें इतनी अधिक भिन्नता दिखायी पड़ती है। कई साल हुए सर रावर्ट मैककैरिसन, कुनूरकी खाद्य-अनुसन्धानशालाके डाइरेक्टर थे। उन्होंने बहुतसे चूहोंको एकत्र करके उन्हें कई भागोंमें विभक्त कर दिया था। चूहोंके एक गरोहको सिखोंका खाना खिलाया जाने लगा, दूसरे गरोहको मरहठोंका और तीसरेको मद्रासियोंका-सा खाना। इस प्रकार जितने प्रान्तोंके भोजनकी परीक्षा करना उन्होंने स्थिर किया था, चूहोंको उन्हीं प्रान्तोंकी खूराक देना शुरू किया। उसका फल क्या हुआ, यह



ऊपर दिये हुए चूहोंके चित्रसे ज्ञात होगा। भिन्न-भिन्न गरोहोंके चूहोंका औसत वजन ग्रामोंमें दिखलाया गया है।

यदि आप इन मुख्य-मुख्य प्रान्तोंके आदमियोंका औसत वजन जाननेकी चेष्टा करें तो आपको इनके वजनमें भी वही अन्तर दिखायी पड़ेगा जो चूहोंमें। इसका कारण यह है कि चूहा भी प्रायः मनुष्यके जैसा ही भोजन करनेवाला जीव है। जो चीजें अच्छी लगती हैं उन्हें ही वह खाता है। चूँकि चूहेकी आयु केवल तीन बरस है इसलिए उसके जन्मसे मृत्यु-तकके कार्योंका निरीक्षण करना अथवा अपने प्रयोगके फलोंको देखना जितना आसान है, मनुष्यपर प्रयोग करके देखना उतना सहज नहीं है। इसीसे खोज करनेवाले लोग चूहोंको बड़े प्रेमसे पालते हैं। कभी-कभी छोटे फतिङ्गे (कैटर पिलर) इस प्रकारकी परीक्षाओंके काममें लाये जाते हैं। इन बातोंसे यही प्रतीत होता है कि सब जीव एकसे हैं।

हमारे भोजनकी रसद और उसकी कमी

७

हम यह देख चुके हैं कि भारतवासियोंको जैसा भोजन मिलना चाहिये उसकी अपेक्षा वर्तमान समयमें मिलनेवाला भोजन बिलकुल ही अपर्याप्त और असन्तुलित है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि हमलोग मूर्ख अथवा विपथगामी हैं। उचित वस्तुएँ यथेष्ट परिमाणमें हमलोग क्यों नहीं खाते, इसका कारण कुछ और भी है। यदि हम अपने भोजनकी चीजोंकी परीक्षा करें और उसकी तुलना अपनी जरूरतोंसे करें तो शायद ठीक उत्तरतक पहुँच सकें।

खाद्य वस्तुओंके सम्बन्धमें भारतवर्ष सर्वथा अपने ही ऊपर अवलम्बित है। किन्तु इङ्गलैण्ड तथा अन्यान्य बहुतसे देशोंकी यह अवस्था नहीं है। उन्हें खाद्य वस्तुओंका बहुत बड़ा भाग दूसरे देशोंसे लेना पड़ता है। हम अन्य देशोंसे जो कुछ खरीदते हैं या उनके हाथ जो कुछ बिक्री करते हैं वह नहींके बराबर है। यह सच है कि द्वितीय महायुद्धसे पहले हम कुछ चावल बर्मा, स्याम, और हिन्दचीनसे मँगाया करते थे, लेकिन जब हम उन आँकड़ोंको देखते हैं तो मालूम होता है कि वह हमारे यहाँके चावलकी पैदावारके ४–५ प्रतिशतसे अधिक नहीं था। शेष सब चावल हम स्वयं पैदा करते थे। इसी प्रकार हम अपने चावलकी पैदावारका केवल एक प्रतिशत और गेहूँकी पैदावारका सिर्फ तीन प्रतिशत भाग बाहर भेजते थे। अवश्य ही बाहरसे डिब्बोंमें भरकर मुरब्बा, मक्खन, पनीर, शफतालू और अलूचा आदि चीजें इस देशमें आती हैं; किन्तु उन चीजोंको हमने इसलिए छोड़ दिया है कि खाद्य सामग्रीकी विशालताकी तुलनामें उनकी मात्रा इतनी अल्प है कि

हिसाबमें जोड़नेकी जरूरत दिखायी नहीं पड़ती। इसके सिवा, इन चीजोंको मुट्ठीभर धनी पात्र ही खरीद सकते हैं, इसलिए सर्वसाधारणसे उक्त चीजोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। जो भी हो, हमारे देशकी आमदनी और रफ्तनी (खाद्य वस्तुओंकी) बराबर है, इसलिए यह साबित हो गया कि भोजनके सम्बन्धमें भारतवर्ष परमुखापेक्षी नहीं है। फिर भी दुर्भाग्यवश इससे यह नहीं समझा जा सकता कि हमारा देश अपने पैरोंपर खड़ा है।

अपने भोजनके पदार्थोंकी जाँच करनेके लिए हमें यह बात जाननी होगी कि हम विभिन्न प्रकारकी भोजन-सामग्री किस परिमाणमें पैदा करते हैं। लेकिन मुश्किल यह है कि इस विषयमें हमारी जानकारी बहुत ही कम है और जो है भी वह अधिक विश्वसनीय नहीं है। यह बात सर्वमान्य है कि सरकारकी ओरसे जो हिसाब तैयार किया जाता है वह बहुत सही नहीं रहता और कई बातोंमें वह सत्यताके निकट बिलकुल ही नहीं पहुँच पाता। जब भारत-सरकारको यह जाननेकी जरूरत पड़ती है कि देशमें कितना धान और कितना गेहूँ पैदा हुआ है तो वह यह करती है कि प्रति एकड़की पैदावारके हिसाबसे बोयी जानेवाली सब जमीनकी पैदावार निकाल लेती है। किन्तु ये दोनों ही बातें धुँधली हैं। बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा और आसाम आदि प्रान्तोंमें कौनसा अन्न कितने रकबेमें बोया जाता है, यह बात मोटे तौरपर मालूम है। सारे देशमें बिखरे हुए देशी राज्योंके सम्बन्धमें किसीको यह पता नहीं है कि कौनसी फसल कितने रकबेमें बोयी गयी है। परिणाम यह होता है कि सरकार द्वारा प्रकाशित आँकड़ोंसे हम देशके केवल दो तिहाई भागकी पैदावार जान पाते हैं। शेषके लिए हमें अटकलसे काम लेना पड़ता है। इसके सिवा जब सरकार प्रति एकड़की पैदावारके हिसाबसे किसी फसलकी पैदावार निकालने बैठती है तो और भी अधिक शोचनीय अवस्था हो जाती है। प्रान्तोंसे आयी हुई रिपोर्टोंके आधारपर ही यह हिसाब तैयार किया जाता है। पहले गाँवोंके पटवारी पड़ताल करके इसकी रिपोर्ट जिलेमें भेजते हैं और फिर जिलेसे जिलेभरकी रिपोर्ट एकत्र करके प्रान्तमें भेजी जाती है। इस

प्रकार ६ लाख ५६ हजार गाँवोंकी रिपोर्टके आधारपर हिसाब तैयार किया जाता है। गाँवका पटवारी ही इस विशाल रिपोर्टकी नींव होता है; इसलिए यह बात स्पष्ट है कि जब हम इस त्रिकोण बुर्जकी चोटीतक पहुँचते हैं तो असली हिसाब हमसे बहुत दूर हट जाता है। इसलिए यह कहना सही है कि सरकारके आँकड़े असली हिसाबकी अपेक्षा अनुमानपर ही अधिक अवलम्बित हैं। उनसे मामूली तौरपर मोटे हिसाबका आभास-मात्र मिल सकता है, असली हिसाबका पता नहीं लगाया जा सकता। जो हो, हमारे सामने जो आँकड़े मौजूद हैं, उन्हींसे काम चलाना होगा। इसलिए सरकारी आँकड़ोंके आधारपर आइये देखें कि हम कौनसा अन्न कितने परिमाणमें पैदा करते हैं।

सबसे पहले हम अपने मुख्य आहारकी चीजोंपर विचार करेंगे। नये आँकड़े जो मौजूद हैं, उनसे मालूम होता है कि सालमें करीब २ करोड़ ९० लाख टन चावल, १ करोड़ टन गेहूँ, २५ लाख टन जौ, १ करोड़ ९५ लाख टन ज्वार-बाजरा—सब मिलाकर ६ करोड़ १० लाख टन अनाज हमारे देशमें पैदा होता है, किन्तु कुल अनाज हमें नहीं मिलता, क्योंकि इसका प्रायः १२॥ प्रतिशत अन्न हमें बीज और छीजनके लिए अलग कर देना पड़ता है। उसे निकाल देनेपर हमारे पास प्रायः ५ करोड़ ३४ लाख टन बचता है। अब हमें यह देखना है कि हमें आवश्यकता कितने अन्नकी है। पाँचवें परिच्छेदमें बतलाया जा चुका है कि एक बालिग पुरुषके लिए रोजाना प्रायः सवा पौंड अन्नकी जरूरत पड़ती है और स्त्रियों एवं बच्चोंके लिए इससे कुछ कमकी। कुल आबादीको बालिग पुरुषोंमें बदलनेके लिए सरल उपाय यह है कि पूर्ण जन-संख्याकी तीन चौथाई संख्या मान ली जाय। इस आधारपर हमें अपनी पूरी आबादीके लिए प्रतिदिन प्रतिमनुष्य $(\frac{५}{४} \times \frac{३}{४}) = \frac{१५}{१६}$ पौण्ड अन्नकी जरूरत है। इस हिसाबसे समूचे देशके लिए ६ करोड़ ११ लाख टन अन्न चाहिये। इस प्रकार देखा जाता है कि सालाना हमें ७·७ लाख टन अन्नकी कमी पड़ती है। यहाँ यह बात याद रखनी चाहिये

कि इतने अन्नकी हमें उस वक्त जरूरत है जब यहाँके लोगोंको सन्तुलित भोजनके लिए तरकारी, दूध और दूसरी चीजें मिलती हों। लेकिन आजकल हमारे देशके अधिकांश लोग अन्नपर बसर करते हैं, अन्य प्रकारकी खाद्य वस्तुएँ उन्हें बहुत कम मिलती हैं। ऐसी दशामें एक बालिग पुरुषके लिए सवा पौण्डसे अधिक अन्नकी जरूरत होगी। इसका यह अर्थ हुआ कि आजकल हमारी वास्तविक कमी ऊपर दिये हुए आँकड़ेसे बहुत अधिक है। जो लोग यह कहते हैं कि इस देशकी वर्तमान दशामें प्रतिवर्ष प्रायः एकसे दो करोड़ टनतक अन्नकी कमी पड़ती है, वे बिलकुल ही झूठ नहीं कहते।

दालमें भी अत्यन्त कमी दिखायी पड़ती है। दालकी हमारी कुल पैदावार ८५ लाख टन है। बीज और छीजन बाद कर देनेपर ७५ लाख टन दाल शेष रहती है। पाँचवें अध्यायमें हमने बतलाया है कि प्रत्येक बालिग पुरुषके लिए रोजाना ३ औंस दालकी जरूरत होती है। इस हिसाबसे हमें सालमें ९३ लाख टन दाल चाहिये। इसमें भी १८ लाख टन दालकी कमी दिखायी पड़ रही है।

किन्तु हमारे यहाँ केवल अनाज ही नहीं पैदा होता। खानेकी अन्यान्य चीजोंकी भी खेती होती है। जैसे साग, तरकारी और फल— स्वास्थ्यके लिए इनकी विशेष जरूरत है यह बातें हम पहले ही बतला चुके हैं। इसीसे साग, तरकारी और फल आदिको देह-रक्षाकारी भोजन कहा जाता है। भोजनके सन्तुलनके लिए शाकाहारियोंको १२ औंस (डेढ़ पाव) और मांसाहारियोंको ८ औंस (एक पाव) तरकारी खाना आवश्यक है। इस हिसाबसे औसतन प्रत्येक बालिग पुरुषके लिए रोजाना दस औंस तरकारी चाहिये। इसलिए सालभरमें ३ करोड़ टन तरकारी लगेगी। किन्तु तरकारीकी हमारी वर्तमान पैदावार केवल ९० लाख टन सालाना है। इसलिए तरकारी और फल आदिकी खेती प्रायः तिगुनी बढ़नी चाहिये।

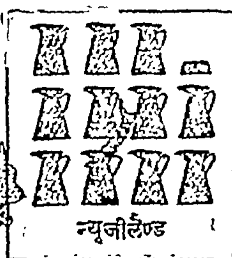
दूसरा पोषक पदार्थ दूध है। बच्चोंके लिए तो यह सबसे अधिक आवश्यक भोजन है और हमारी आधी आबादी बच्चे और बालक-बालिकाओंकी ही है। इस देशमें दूधकी प्राप्ति ६२ करोड़ मन प्रतिवर्ष है। इसका आधा दूध भैंससे, ४७ प्रतिशत दूध गौओंसे और शेष ३ प्रतिशत (जो दूध गान्धीजी पीते हैं वह भी इसमें शामिल है) बकरियोंसे प्राप्त होता है। किन्तु यह भी सबका सब हमें नहीं मिल जाता। इसमें सबसे पहला हक बछड़ोंका है। दूधका रोजगार करनेवाले विशेषज्ञोंका कहना है कि १५ प्रतिशत दूध हमें अपने प्रतिद्वन्द्वियों (बछड़ों) के लिए छोड़ देना चाहिये। ऐसी दशामें मनुष्योंको पीनेके लिए लगभग ५२ करोड़ मन दूध शेष रहता है। यदि सब लोग बराबर बराबर दूध लें तो फी आदमी रोजाना २॥ छटाँक मिलेगा। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सबको इतना दूध मिलता है। २७ प्रतिशत दूध तो पिया जाता है, शेष दूध घी, मक्खन, खोया और दही आदि भिन्न-भिन्न चीजोंको बनानेमें खर्च होता है, और दुख तो इस बातका है कि दूध ज्यादा मिलनेकी कौन बात कहे १९३५ से १९४० के बीच करीब १२ प्रतिशत प्रतिव्यक्ति दूध कम मिला।

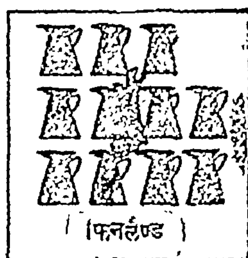
अब यह देखना चाहिये कि यह दूध हमारी आवश्यकतासे बेशी है या कम। सन् १९४३ में अमेरिकामें जो संयुक्तराष्ट्रोंका खाद्य और पुष्टि-विषयक सम्मेलन हुआ था उसमें उसने प्रति मनुष्य प्रतिदिन १०॥ छटाँक दूध मिलनेकी सिफारिश की थी। क्या यह मात्रा अधिक जान पड़ती है? किन्तु यदि हम इस विषयमें अन्य देशोंसे तुलना करके देखें तो यह मात्रा अधिक नहीं जँचेगी।

अण्डे, मछली और मांस—उन लोगोंके लिए जो यह सब खाते हैं—बहुत ही पुष्टिकारक चीजें हैं। किन्तु यहाँ भी वही दुःखद अन्तर आवश्यकता और पैदावारके बीच दिखायी पड़ता है। सबसे अधिक दुःखकी बात मछलियोंके सम्बन्धमें है। हमारे देशके तीन ओर फैले हुए विशाल

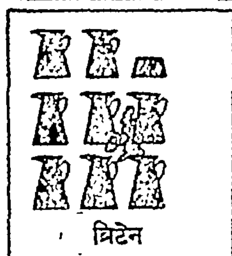
समुद्रमें मछलियाँ भरी पड़ी हैं, किन्तु हम उनसे बहुत ही कम लाभ उठाते हैं।

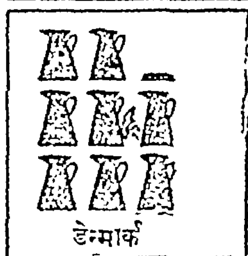




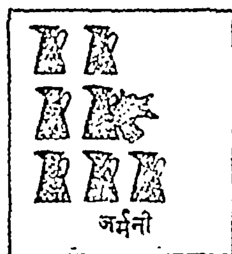


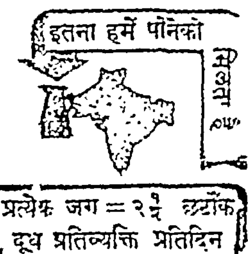










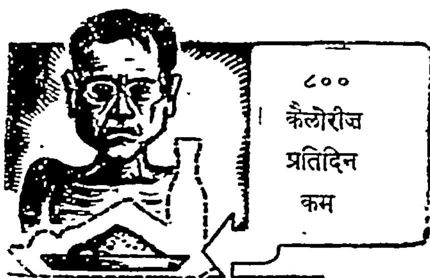


इन सब विभिन्न वर्णनोंसे हमें नीचेकी तालिकामें अपने मुख्य-मुख्य खाद्य वस्तुओंका साधारण तौरपर हिसाब प्राप्त होता है—

अनाज	...	५ करोड़ ३५ लाख टन
दाल	...	७५ लाख ,,

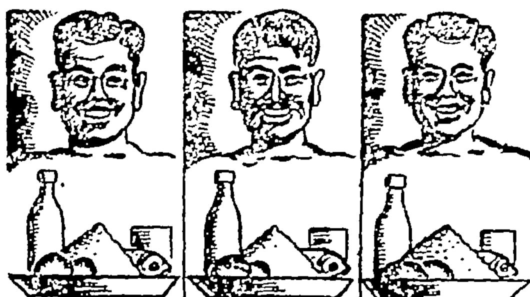
फल	...	१ करोड़ ७ लाख ,,
साग-सब्जी	...	९० लाख ,,
मूँगफली	...	२० लाख ,,
चीनी	...	५० लाख ,,
दूध	...	१ करोड़ ८८ लाख ,,
मांस	...	१० लाख ,,
मछली	...	६ लाख ७० हजार ,,
अण्डा	...	३३० करोड़

अब हमें यह देखना है कि हमारे जातीय और व्यक्तिगत प्रयोजनकी तुलनामें यह तादाद काफी है या नहीं। इसके लिए हमें फिर एक बार अपने पुराने दोस्त कैलोरीका सहारा लेना पड़ेगा। जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि भोजन चाहे जिस तरहका हो, उसकी मात्रा कम हो या अधिक, कैलोरीमें रूपान्तरित किया जा सकता है। इस प्रकार हमारे भोजनके परिमाणको कैलोरीमें परिवर्तित करनेपर उसकी संख्या सालमें २९ लाख करोड़ होती है। इस हिसाबसे हमें फी आदमी दैनिक २००० कैलोरीकी शक्तिका भोजन आवश्यक है। तीसरे अध्यायमें हम कह आये हैं कि शरीरको स्वस्थ और शक्तिसम्पन्न रखनेके लिए प्रतिदिन



२८०० कैलोरीजकी जरूरत है। इससे यह सिद्ध हुआ कि यदि हम सब लोग बराबर-बराबर भोजन करें तो हममेंसे हरएकको प्रतिदिन ८०० कैलोरी शक्ति कम मिलेगी। अर्थात् हमलोग कुलमें अपने आवश्यक भोजनका ⅔ भाग खाकर जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य हैं।

समस्या यह है कि यदि हम, सब भारतवासियोंके लिए पूरे और सन्तुलित भोजनकी व्यवस्था करें तो इस देशके ११ करोड़ ५० लाख आदमी भूखे रह जायँ।





खूराककी कमीका नतीजा

८

आइये सरसरी तौरपर यह देखें कि कम अथवा अनुपयुक्त खूराक मिलनेसे हमारे शरीरपर उसका क्या असर पड़ता है। यदि मनुष्य पोशाकसे सुन्दर जँचता है तो मानना पड़ेगा कि सुन्दरताके लिए भोजन तो उससे भी बढ़कर आवश्यक है। बहुत अंशोंमें हमारी रचना हमारे भोजनके अनुसार होती है। भोजनके अनुसार केवल शरीरकी ही रचना नहीं होती बल्कि मन, चरित्र और मिजाजकी भी। बंगाल प्रान्तका अभी हालहीका खाद्य-संकट इसका प्रमाण है। प्रान्तका बहुत बड़ा भाग उस समय भूखा था। कुछ ही दिन भोजन न मिलनेसे साधारण स्वस्थ लोगोंके चरित्रमें कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता है, यह बात दुर्भिक्षके समय भलीभाँति देखनेमें आयी। अच्छे-अच्छे लोग भी अपनेको वशमें नहीं रख पाते और पशुवत् आचरण करने लगते हैं। थोड़ेसे भोजनके लिए वे उसी प्रकार लड़ते दिखायी पड़ते हैं, जैसे कुत्ते हड्डीके एक टुकड़ेके लिए। माताएँ कुछ आने पैसोंके लिए अपने बच्चोंको बेच देती हैं, पति अपनी पत्नीको छोड़कर चल देता है। सच यह है कि जब सीमासे अधिक भूखा रहना पड़ता है, तब साधारण मनुष्य प्रायः बर्बाद हो जाता है।

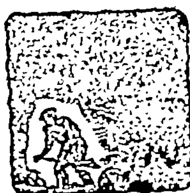
अब जरा गाँवके एक लड़केको देखिये। किसान मजदूरका लड़का, भरपेट अन्न नहीं पाता, फटे मैले कपड़ोंसे शरीर ढँका हुआ—जबतक उसकी यह दशा रहती है तबतक उसके चेहरेपर त्रस्तभाव दिखायी पड़ता है। किसी शिक्षित या सम्पन्न व्यक्ति अथवा जमींदारके मामूली प्यादेके सामने वह भयभीत होकर बातें करता है, किन्तु वही लड़का जब फौजमें भरती हो जाता है, वर्दी पहन लेता है, और कुछ हफ्ते या महीनेतक

भरपेट खा लेता है तब वह संसारके अच्छेसे अच्छे और बहादुरसे बहादुर सिपाहियोंकी श्रेणीमें गिना जाने लगता है।

इसलिए यह मानना पड़ेगा कि असल चीज खूराक है। भारतवासियों-के जीवनमें उपवास प्रायः एक स्थायी अभिशापकी तरह हो गया है। बहुत दिनोंसे भूखों मरते-मरते हम ऐसे दुर्बल हो गये हैं कि स्वाधीनताके आदर्शका हममें ज्ञानतक नहीं रह गया है, स्वाधीनताके अधिकारकी बात भी हम ऊँची आवाजमें नहीं कह सकते। हमारे भीतरी विरोध जिस प्रकार भयंकर बाधक हैं, ठीक उसी प्रकार दरिद्रता भी नाना प्रकारसे हमें दबाये हुए है। हम अपने अधिकारोंकी माँग भी नहीं कर सकते और न संसारके राष्ट्रसंघमें ही स्वाधीन भारतका आसन कायम कर सकते हैं। इसका असली कारण सम्भवतः अच्छी खूराकका न मिलना ही है।

अकर्मण्यता और काहिली भी अच्छी खूराक न मिलनेके कारण ही हममें आ घुसी हैं। बहुधा यह शिकायत सुननेमें आती है कि हमारे कारखानोंके मजदूर और खेतीमें काम करनेवाले किसान आलसी और अकर्मण्य हैं। इस प्रकारकी शिकायतें बहुत अंशोंमें सही हैं। कहा जाता है कि जहाँ अमेरिकाका एक खान खोदनेवाला मजदूर सालमें ५८९ टन माल खोदता है, इंगलैण्डका मजदूर ३०० टन और जर्मनीका मजदूर









२४३ टन, वहाँ भारतका मजदूर केवल ८० टन माल खानसे बाहर निकाल-

पाता है। यह अन्तर दूसरे कारबारकी नजीर देकर भी साबित किया जा सकता है। बहुत अंशोंमें इसका कारण अपुष्टकर भोजन है।

एक अस्वस्थ और दुर्बल जातिके लिए आजादी और कर्म-क्षमता प्राप्त करना आसान नहीं है। इसीसे रोमनोंके यहाँ एक पुरानी कहावत है—'स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन' लेकिन स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मनके लिए आवश्यकता होती है पुष्टिकारक भोजनकी। भारतवासियोंके साधारण भोजनमें पौष्टिक अंश कितना कम रहता है यह बात हम पहले ही कह आये हैं। यही वजह है कि यहाँके लोग स्वाभाविक ही अनेक तरहके रोग-व्याधियोंके शिकार बने हुए हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल पौष्टिक भोजनका न मिलना ही हमारी अस्वस्थता और दुर्बलताका कारण है। कुछ और कारण भी हैं जिनसे हम अल्पायु और रोग-व्याधियोंके शिकार बने हुए हैं। उदाहरणके लिए, गन्दगी और स्वास्थ्य-की दुर्व्यवस्थाका उल्लेख किया जा सकता है। हमलोगोंके स्वास्थ्यकी देखरेख करनेके लिए भी उचित प्रबन्ध नहीं है। इसके सिवा बाल-विवाह, पर्दा आदिके समान बहुत-सी सामाजिक कुरीतियाँ भी हैं। मलेरियाका भी भयंकर प्रकोप है। लेकिन यह सब होते हुए भी दृढ़ताके साथ कहा जा सकता है कि सारहीन भोजन ही भारतवासियोंकी दुर्गतिका मुख्य कारण है।

हम दूसरे अध्यायमें कह आये हैं कि विटामिन और धातव लवण इत्यादि शरीर-रक्षाके लिए बहुत आवश्यक हैं और इनकी कमी होनेसे शरीरमें बहुत तरहकी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।

सन्तुलित भोजन न मिलनेके कारण भारतवासियोंकी क्षतिको जाननेके लिए आसान तरीका यह है कि अपने देशमें होनेवाली मृत्युसंख्याकी तुलना अन्य देशोंकी मृत्युसंख्यासे करें। इस सम्बन्धमें संसारके सब देशोंसे हमारा स्थान बहुत नीचे है। हमारे देशमें प्रति हजार २२·४ आदमी मरते हैं। किन्तु एशियाके अन्यान्य देशोंकी दशा इतनी खराब नहीं है। जावा द्वीपमें प्रति हजार १८·८ और जापानमें १७·० मृत्युएँ

होती हैं। इस विषयमें पश्चिमी देशोंकी दशा हमसे बहुत अच्छी है। ग्रेट ब्रिटेनमें प्रति हजार १२·४ मौतें होती हैं और अमेरिकामें ११·२ यानी हमारी आधी।

ऐसी ही शोचनीय दशा बच्चोंकी मृत्युकी भी है। एक सालके भीतरके बच्चोंकी मृत्युसंख्या देखकर चक्कर आ जाता है। भारतवर्षमें हरसाल एक वर्षसे कम उम्रके दस लाख बच्चे मरते हैं। हमारे देशमें पैदा होनेवाले बच्चोंकी मृत्युसंख्या प्रति हजार १६२ है, किन्तु जापानमें प्रति हजार १०६, ग्रेट ब्रिटेनमें ५८ और अमेरिकामें केवल ५४ है। हिसाब लगाया गया है कि भारतवर्षमें हरसाल जितनी मौतें होती हैं, उनमें आधा भाग दस सालके भीतरके बच्चोंका रहता है।

बच्चा पैदा होनेके समय जितनी स्त्रियाँ इस देशमें मरती हैं, उतनी



और किसी देशमें नहीं। इस देशमें प्रति हजार २४ स्त्रियाँ प्रसवकालमें

मरती हैं। हिसाब लगाया गया है कि यहाँ हर साल लगभग दो लाख स्त्रियोंकी मृत्यु इस अवस्थामें होती है।

नतीजा यह है कि इस देशमें पैदा होनेवाले बच्चोंकी औसत आयु २७ साल है। जापानकी ४७ साल, इङ्गलैण्ड और अमेरिकाकी ६२ साल है। न्यूजीलैण्डके बच्चोंकी औसत आयु ६७ साल—यानी संसारके सब देशोंसे अधिक है।



क्या खानेवाले अधिक हैं ?

१

यदि देशमें खानेकी चीजें निर्दिष्ट परिमाणमें हों तो हममेंसे प्रत्येकको खानेके लिए कितना सामान मिलेगा, इसका हिसाब खानेवालोंकी संख्यासे लगाया जा सकता है। दूसरे शब्दोंमें इसे यों कह सकते हैं कि खुराकके सम्बन्धमें यदि किसी तरहकी बहस की जाय तो और बातोंपर विचार करनेके साथ ही जनसंख्यापर भी विचार करना आवश्यक है।

पिछली चन्द शताब्दियोंके भीतर भारतकी आबादी बहुत बढ़ी है। कहा जाता है कि सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें यानी अकबरकी मृत्युके समय १६०५ में भारतकी आबादी लगभग १० करोड़ थी। यह अनुमान कहाँतक सही है, यह कहना कठिन है। अठारहवीं शताब्दीके मध्यतक वह संख्या बढ़कर १५ करोड़ हो गयी थी। सन् १८७२ में आबादी २० करोड़ ६० लाख, १९३१ में ३५ करोड़ और १९४१ में ३८ करोड़ ९ लाख थी। यदि ५० लाख प्रतिवर्षके हिसाबसे आबादीका बढ़ना मान लिया जाय तो आज यह जनसंख्या ४० करोड़ १० लाख हो गयी होगी। इसमें सन्देह नहीं कि यहाँकी आबादी बहुत तेजीसे बढ़ी है, किन्तु यह सोचना अनुचित होगा कि संसारमें केवल हमारी ही संख्या बढ़ी है। वस्तुतः यदि पिछले वर्षोंका हिसाब देखा जाय तो ज्ञात होगा कि अन्यान्य देशोंकी तुलनामें हमारे देशकी आबादी बहुत कम बढ़ी है। सन् १८७० और १९३० के बीच हमारी आबादी ३०·७ फी सदी बढ़ी थी, किन्तु इंगलैण्ड और वेल्सकी ७७ फी सदी, जापानकी ११३ और रूसकी ११५ फी सदी बढ़ी थी। ये देश अपनी बढ़ती आबादीके भोजनका प्रबन्ध कर सके, क्योंकि इनमेंसे कईके पास उपनिवेश हैं और

कईके हाथमें शोषण करनेके लिए अधीनस्थ देश हैं। इसके सिवा ये देश शिल्पोन्नत हैं, इनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी है। इन्हीं कारणोंसे आबादीका बढ़ना उक्त देशोंको चिन्तित नहीं कर सकता। किन्तु इन मामलोंमें हमारी अवस्था बिलकुल भिन्न है, इसलिए हम उक्त देशोंकी बराबरी नहीं कर सकते। हमारे देशमें प्रति छः नवजात बच्चोंमें एक बच्चा मर जाता है। इस शोचनीय घटना और स्त्री-पुरुषों तथा बच्चोंकी अपार दयनीयताकी बात जब हम सोचते हैं तो ज्ञात होता है कि बच्चोंकी जन्मकी वृद्धिके लिए हमें अत्यधिक ऊँची कीमत चुकानी पड़ रही है जिसका बोझ सँभालना हमारी सामर्थ्यके बाहर है।

बढ़नेवाली आबादीके भोजनके लिए भारतवर्ष केवल यही उपाय कर सकता है कि वह अपने देशकी पैदावार बढ़ावे। किन्तु क्या आबादी बढ़नेके साथ-साथ हमारे देशकी पैदावार नहीं बढ़ रही है? खाद्य सामग्रीके उत्पादन और आबादी इन दोनोंकी दौड़में कौन आगे बढ़ रहा है इस सम्बन्धमें कुछ मतभेद हो सकता है। प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जीने अपनी पुस्तक 'दी फूड सप्लाई'में लिखा है कि सन् १९१०–१९१५ के भीतर जो भोजन-सामग्री और आबादी थी उसे यदि हम १०० मान लें तो १९३७–१९३८ में भोजन-सामग्री ११८ दिखायी पड़ती है और आबादी १२५। अर्थात् इस होड़की दौड़में भोजन-सामग्रीका उत्पादन हार गया है। यह तो हुई एक पक्षकी बात। अब दूसरे पक्षकी ओर ध्यान दीजिये। केट एल० मिचिल अपनी पुस्तक 'इण्डिया विदाउट फेबल'में लिखती हैं कि सन् १९१० से १९३० के भीतर भारतकी आबादी १७ प्रतिशत बढ़ी, किन्तु खाद्यका उत्पादन ३० प्रतिशत बढ़ गया। पी० जे० टामस और एन० एस० शास्त्रीने 'इण्डियन एग्रीकल्चरल स्टेटिस्टिक्स' नामकी पुस्तकमें हिसाब लगाकर दिखलाया है कि यदि १९२०–२२ में आबादी और खेतीकी पैदावारको १०० मान लिया जाय तो १९३४–३६ में जनसंख्या ११५ हो गयी और खेतीकी पैदावार १२१। ये बातें असमञ्जसमें डालनेवाली हैं। किन्तु जब हम

इस बातका खयाल करते हैं कि भारतकी पैदावारके आँकड़े पूर्णतया विश्वास करने योग्य नहीं हैं और उनकी मददसे जिसके जो मनमें आये साबित कर सकता है तो हमारी चिन्ता कम हो जाती है।

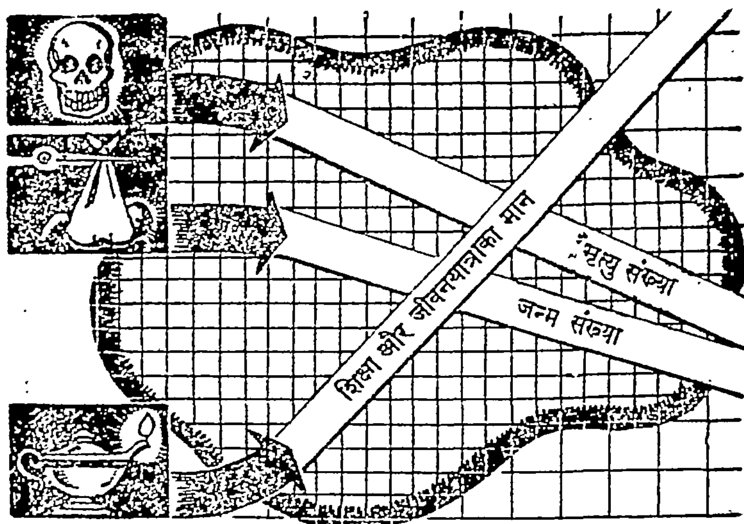
हिसाब लगाया गया है कि ब्रिटिश भारतमें हर व्यक्ति पीछे ०·८६ एकड़ जमीनमें पैदावार की जाती है। यदि समूचे देशका हिसाब जोड़ा जाय तब भी यह संख्या विशेष इधर-उधर नहीं हो सकती। अमेरिकाके विशेषज्ञोंका अनुमान है कि पर्याप्त भोजनके लिए फी आदमी २·१ एकड़ जमीनकी जरूरत होती है। तंगीके साथ भोजन प्राप्त करनेके लिए भी प्रत्येक आदमीको १·२ एकड़ जमीनका मिलना जरूरी है। ऊपरकी संख्याओंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तुलनामें हमलोगोंकी अवस्था बड़ी ही शोचनीय है। काश्त होनेवाली जमीन और जनसंख्यामें बहुत अन्तर है। यद्यपि इस विषयमें प्रकाशित सब आँकडे अप्रामाणिक और परस्पर विरोधी हैं, फिर भी डाक्टर डब्ल्यू० आर० एक्रायडने अपनी 'न्यूट्रीशन' नामक पुस्तकमें जो बात लिखी है उसका अनुमोदन करना सम्भवतः असंगत न होगा। उन्होंने कहा है—'जो प्रमाण पाये गये हैं उनसे यही ज्ञात होता है कि काश्त होनेवाली जमीनका परिमाण जनसंख्या-वृद्धिके अनुपातसे बढ़ नहीं रहा है, बल्कि घट रहा है'।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि इसमें सुधार नहीं हो सकता, क्योंकि इस देशमें काश्त होने योग्य बहुतसी जमीन अभी परती पड़ी है। इसके सिवा काश्त होनेवाली जमीनकी पैदावार आबादीके अनुपातसे बढ़ानेकी जरूरत है। केट मिचिलने ठीक ही लिखा है—

'यह सही है कि खाद्य पदार्थोंकी वर्तमान पैदावार पर्याप्त नहीं है, किन्तु इस कमीका कारण आवश्यकतासे अधिक आबादी नहीं है बल्कि काश्त होनेवाली जमीनकी पैदावार बढ़ाने और आवश्यकतानुसार परती जमीनको काश्त करनेकी ओर ध्यान न देना है। असल बात यह है कि इसपर विश्वास करनेके लिए बहुतसे प्रमाण मौजूद हैं कि उत्पादन-शक्ति बढ़ाकर भारतवर्ष वर्तमान जनसंख्याकी अपेक्षा बहुत अधिक लोगोंका

भरण-पोषण कर सकता है। हिन्दुस्तानकी गरीबीका कारण जनसंख्या-वृद्धि नहीं है बल्कि यहाँकी आर्थिक उन्नतिका ठिठुर जाना है।'

ऊपरकी बात सर्वथा सत्य है, फिर भी यह बात माननी पड़ेगी कि यहाँकी आबादी बहुत बेशी है। प्रोफेसर कार-साण्डर्सके शब्दोंमें कहा जा सकता है कि 'सब अवस्थाओंपर दृष्टि डालते हुए भारतवर्षकी आबादी बहुत बेशी है।' जबतक हम खेतीकी उन्नतिकी व्यवस्था न कर लें तथा कार-सांडर्सकी कही हुई 'सब अवस्थाओं' का सुधार न कर लें तबतक जन्मनिरोधद्वारा जनसंख्या-वृद्धिको रोक रखना ही हमारे लिए हितकर है। दुर्भाग्यवश इन दोनों कामोंमें पहले कामको पूरा करना भारतवासियोंकी अज्ञानता और दरिद्रताके कारण बहुत कठिन है। इसलिए हमें जन-स्वास्थ्य सेवाओंद्वारा जन्म-निरोधकी सुविधा तो देनी ही चाहिये साथ ही हमारा पहला और खास काम है खाद्यपदार्थोंकी पैदावार बढ़ाकर उतने परिमाणमें करना जितनेसे समूची आबादीका पेट अच्छी तरह भर



सके। इसका परिमाण कितना होना चाहिये, सातवें अध्यायमें इसका जवाब लिखा जा चुका है। उस स्थानपर लिखा गया है कि हमारे देशके लिए जितनी खूराक जरूरी है उसका ⅚ भाग हम आजकल पैदा कर रहे हैं। इसलिए खाद्य-पदार्थोंकी पैदावारमें यदि ३० प्रतिशतकी वृद्धि हो जाय तो वर्त्तमान आबादीके लिए भोजनकी तङ्गी दूर हो सकती है। भविष्यमें यदि आबादी बढ़ेगी तो उसी अनुपातसे पैदावार भी बढ़ानी होगी। क्या ऐसा करना असम्भव है ? यह कठिन तो हो सकता है, पर असम्भव नहीं है। आगेके अध्यायमें इस विषयकी आलोचना की जायगी।

अन्यान्य देशोंके अनुभवसे साबित होता है कि जब जीवनके मान और शिक्षाकी उन्नति होती है तो पैदाइशकी संख्या कम हो जाती है। जान पड़ता है कि जनतामें क्रमशः जन्मनिरोधके तरीकोंका अधिक प्रचलन होनेके कारण ही ऐसा होता है। देशकी आर्थिक और नैतिक उन्नति होनेपर भारतवर्षमें भी यही बात दिखायी पड़ेगी। 'पन्द्रहवर्षीय योजना'* जो तैयार की गयी है, वह यदि काममें लायी जायगी तो स्वभावतः देशकी आर्थिक उन्नति हो जायगी और शिक्षाका व्यापक प्रचार होगा। शिक्षित और सम्पन्न लोगोंमें जन्मनिरोधकी पद्धतिका प्रचार करना बहुत ही आसान है। इसलिए जन्म और मृत्यु इन दोनों प्रकारकी घटनाओंके नियन्त्रणसे आबादीका बढ़ना उस समय आसानीसे रोका जा सकेगा। श्री एच० जी० वेल्सने जिसे 'वंश-वृद्धिका तूफान' कहा है, उस तूफानको शान्त करना उस समय कठिन न होगा—हमलोग संख्याकी अधिकताको कम करके गुणोंकी ओर मन लगा सकेंगे।

---

* 'भारतकी आर्थिक उन्नतिकी योजना' नामक पुस्तकमें इस योजना-का वर्णन है। यह पुस्तक १=) में ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशीसे प्राप्य है।

अधिक खाद्य

१०

खाद्य पदार्थोंकी स्थायी कमीको दूर करनेकी कोशिश करना तो जरूरी है ही, इसके सिवा लड़ाईकी वजहसे खाद्य पदार्थोंकी कमीका जो सवाल पैदा हो गया है, उसे भी हल करना है। इस समस्याको हल करनेके लिए भारतवर्ष तथा दूसरे देशोंमें अधिक गल्ला पैदा करनेकी कुछ कोशिशें की जा रही हैं। सन् १९३८ में इंगलैण्ड अपनी आवश्यकताका ४० प्रतिशत भाग खाद्य पदार्थ पैदा करता था; किन्तु पैदावारकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करनेका फल हुआ कि १९४२ में वह ६० प्रतिशत और १९४३ में ७५ प्रतिशत स्वयं पैदा करने लगा। यह उन्नति वास्तवमें असाधारण है। भारतवर्षमें भी सरकारने 'अधिक गल्ला पैदा करो' का आन्दोलन करना शुरू किया और उसने दावा किया है कि करीब १ करोड़ १० लाख एकड़ जमीनपर खाद्य पदार्थोंकी खेती होने लगी है। किन्तु खेतीकी जमीन बढ़ जानेपर भी चावल, गेहूँ आदि अनाजोंकी पैदावारमें युद्धकालमें कोई विशेष तरक्की नहीं हुई है। इस विषयमें इंगलैण्डमें जो आश्चर्यजनक उन्नति हुई है उसके साथ तुलना करनेमें इस देशकी उन्नतिमें बड़ा अन्तर है। इस अन्तरके बहुतसे कारण हैं। एक कारण तो यह है कि काफी जमीन यानी ४० प्रतिशतसे भी अधिक—पहलेसे कास्त होती आ रही थी इसलिए उसका परिमाण दो या तीन प्रतिशत बढ़ाना असम्भव नहीं था। दूसरा कारण यह है कि इस देशके लोगोंने पैदावार बढ़ानेके लिए वैसे उत्साहसे काम नहीं किया जैसा कि इंगलैण्डवालोंने। कारण यह कि प्रजा और राजाका पारस्परिक सम्बन्ध दोनों जगह एक तरहका नहीं है। इसके अतिरिक्त यहाँकी

सरकारमें वैसी कार्य-क्षमता और चेष्टा नहीं है जैसी वहाँकी सरकारमें है। इंगलैण्डकी सरकार अन्न पैदा करनेवाले किसानोंकी सहायता खुले हाथसे करती है किन्तु भारतवर्षका अधिकारीवर्ग वैसी सहायता करनेके लिए अग्रसर नहीं होता।

किन्तु यदि सुयोग और सुविधाएँ प्राप्त हों तो भारतवर्षमें खाद्य-पदार्थोंकी पैदावार कुछ वर्षोंके भीतर दूनी या तीगुनी की जा सकती है। पन्द्रहवर्षीय योजनामें वर्त्तमान पैदावारको १२० प्रतिशत बढ़ानेका अनुमान किया गया है। भारतवर्षमें खेती और पशुओंकी नस्लकी तरक्कीके लिए जो राजकीय कृषि अनुशीलन समिति (इम्पीरियल कौंसिल आफ एग्रिकल्चरल रिसर्च) है उसकी स्मारक लिपिमें शुरूके दस सालमें ५० प्रतिशत और बादके पाँच सालमें ५० प्रतिशत यानी पन्द्रह सालमें वर्तमान पैदावारको दूना कर देनेका अनुमान किया गया है। पन्द्रह वर्षीय योजनामें इसके लिए १२ अरब ४० करोड़ रुपया खर्च करनेका अनुमान लगाया गया है। सरकारी स्मारक लिपिमें १० अरब रुपयेका। अब विचारणीय बात यह है कि खेतोंमें सिक्कों या नोटोंको बीजकी तरह बो देनेसे तो खाद्य पदार्थोंका उत्पादन बढ़ेगा नहीं, वह तो बढ़ेगा आवश्यक उपाय करनेसे। इसलिए अब हमें यह देखना होगा कि खेतीकी उन्नतिके लिए ये रुपये किन-किन कार्योंमें खर्च किये जायँ ताकि पैदावार बढ़े।

खेतीकी उन्नतिके लिए यह काम दो तरहसे आरम्भ किया जा सकता है। एक तो काश्त की जानेवाली जमीनका परिमाण अधिकसे अधिक जितना सम्भव हो बढ़ाया जाय और दूसरा मार्ग यह है कि काश्त किये जानेवाले खेतोंकी पैदावार बढ़ायी जाय। पहले मार्गके लिए खेतोंके विस्तारकी आवश्यकता है और दूसरे मार्गके लिए उपायोंके साथ कृषिकी।

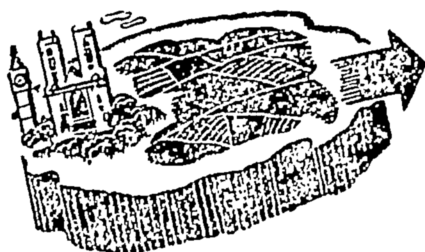
भारतवर्षमें जमीनका कुल रकबा करीब एक अरब एकड़ है। इसमेंसे लगभग ३६ करोड़ एकड़ जमीनमें इस समय फसलें बोयी जाती हैं। करीब ८ करोड़ एकड़ जमीन परती पड़ी रहती है, १७ करोड़

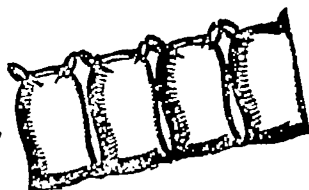
एकड़ जमीन काश्त करने योग्य है लेकिन व्यर्थ पड़ी है। शेष जमीन काश्त करने योग्य बिलकुल ही नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि ऊपरके हिसाबके अनुसार प्रायः २५ करोड़ एकड़ जमीन अब भी ऐसी है जिसमें खेती की जा सकती है। लेकिन इस बातको याद रखना जरूरी है कि इस जमीनको खेतीके काममें लानेसे ही कुछ लाभ नहीं हो सकता जबतक कि उसपर काफी लागत न लगायी जायगी। ऐसी जमीन अधिक है जिसे खेती करनेके योग्य बनानेमें लाभ नहीं हो सकता। कुछ जमीन तो ऐसी है जिसमें गहरी जड़वाली घास फैली हुई है, कुछमें पानी है, कुछ रेतीली है और कुछ जमीन खारी मिट्टी यानी रेहवाली है। इस जमीनकी पैमाइश करनेपर कुछ जमीन खेती करने योग्य निकाली जा सकती है। किन्तु यह काम तभी सम्भव है जब पानी, मवेशी, बीज तथा अन्यान्य साधनोंद्वारा सरकार पूरी मदद देकर किसानोंका हौसला बढ़ावे। तभी ऐसी जमीनको आबाद करनेमें किसान अपना फायदा समझ सकेंगे और वह जमीन खेती करने योग्य बनायी जा सकेगी।

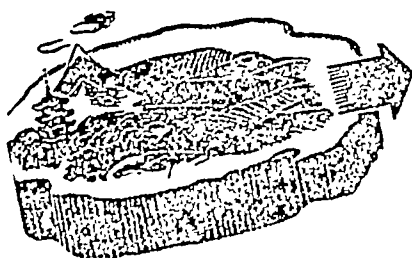
जमीनका परिमाण बढ़ाकर पैदावार बढ़ायी जा सकती है अवश्य, किन्तु खाद्यपदार्थोंकी कमी पूरी करनेके लिए उसकी अपेक्षा सरल मार्ग यह है कि हम काश्त की जानेवाली जमीनकी ही पैदावार बढ़ानेकी चेष्टा करें। इस ओर ध्यान देनेसे बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। अन्यान्य देशोंकी पैदावारके साथ यदि हम अपने देशकी पैदावारकी तुलना करके देखें तो मालूम होगा कि इस विषयमें हमारा देश कितना पिछड़ा हुआ है। नीचे चावलकी पैदावारके आँकड़े दिये जा रहे हैं—

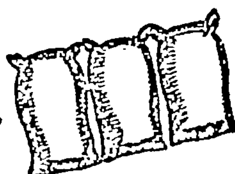
भारतवर्ष	...	फी एकड़	१० मन	(८०० पौंड)
चीन	...	,,	१७ मन २० सेर	(१४०० पौंड)
अमेरिका	...	,,	१८ मन ५ सेर	(१४५० पौंड)
मिस्र	...	,,	२५ मन	(२००० पौंड)
जापान	...	,,	२८ मन ३० सेर	(२३०० पौंड)
इटली	...	,,	३७ मन २० सेर	(३००० पौंड)

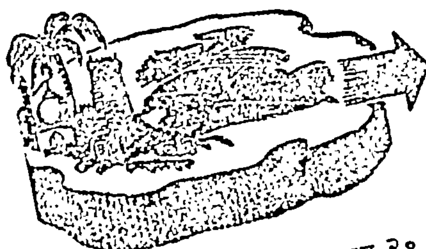
गेहूँकी पैदावारमें भी ऐसा ही अन्तर है। हमारे यहाँ गेहूँकी पैदावार बीसों वर्षसे १० मन प्रति एकड़पर ठहरी हुई है। किन्तु जर्मनीमें गेहूँकी पैदावार जहाँ सन् १९२१ में केवल १८ मन ३० सेर प्रति एकड़ थी, १९४१ में वह बढ़कर २७ मन २० सेर हो गयी है। इटलीमें भी













इधर दस सालके भीतर १२ मन २० सेरसे बढ़कर १६ मन ३५ सेर हो गयी है।

हिसाब लगाकर देखा गया है कि इङ्गलैण्डमें फी एकड़ जितना गेहूँ पैदा होता है उसका चौथाई भारतवर्षमें पैदा होता है। जापानमें भी यहाँका तिगुना गेहूँ पैदा होता है। यह बात बगलके पृष्ठपर दिये गये चित्रसे समझमें आ जायगी।

खेतीकी उन्नति करनेके लिए बहुतसे भिन्न-भिन्न और विचित्र तरीके हैं। जिन प्रक्रियाओंकी सहायतासे खेतीकी उन्नति हो सकती है, उनको काममें लानेके लिए वैज्ञानिक खोज और गहरी छानबीनकी जरूरत है।

खेतीकी उन्नतिके लिए सिंचाईका सुगम साधन जितना आवश्यक है उतना आवश्यक अन्य कोई चीज नहीं है। स्वाभाविक और कृत्रिम—इन्हीं दो तरीकोंसे सिंचाई हो सकती है। सिंचाईका असर जादूका-सा होता है। इसके सहारे मरुभूमिको हरे-भरे देशके रूपमें बदला जा सकता है। जिस जमीनमें पहलेसे खेती की जा रही है, उसकी पैदावार सिंचाईके द्वारा दुगुनी की जा सकती है। भारतवर्षमें काश्त की जानेवाली कुल जमीनकी सिंचाईके लिए यदि जलका प्रबन्ध कर दिया जाय तो केवल इतनेसे ही यहाँकी पैदावार ५० फीसदी बढ़ जायगी—ऐसा विश्वास किया जाता है।

उत्तम खादकी सहायतासे भी पैदावार बढ़ायी जा सकती है। पैदावार बढ़ानेके लिए सिंचाईके बाद खादका ही स्थान है। खेतोंमें अच्छी खाद डालकर परीक्षा ली गयी है। उससे १५० प्रतिशततक पैदावार बढ़ायी जा सकती है। हमारी सब जमीनमें यदि ठीक-ठीक खाद डालनेका प्रबन्ध किया जाय तो देशकी पैदावारमें ३० प्रतिशत वृद्धि हो सकती है। हमारे देशमें खादकी जो कमी पड़ी रही है वह दो तरहसे पूरी हो सकती है। एक तो यह कि पशुओंका गोबर और मूत्र यत्नपूर्वक खादके काममें लाया जाय और दूसरा यह कि शहरोंके मलकी खाद तैयार करके काममें लायी जाय। यह खाद जमीनके लिए बहुत उपयोगी है। इतनेसे

यदि खादकी कमी पूरी न हो तो रासायनिक क्रियाओं द्वारा तैयार की गयी कृत्रिम खाद जो कि उर्वराशक्तिको बढ़ानेमें बेजोड़ है, सल्फेट आफ अमोनियाको काममें लाना चाहिये। हिसाब लगाकर देखा गया है कि भारतवर्षका काम लगभग ५० लाख टन कृत्रिम खादसे चल जायगा। इस समय शुरू-शुरूमें साढ़े तीन लाख टन खाद सालाना तैयार करनेका प्रबन्ध किया जा रहा है। किन्तु इस प्रसंगमें यह बतला देना आवश्यक है कि बिना समझे-बूझे इस रासायनिक कृत्रिम खादका ठीक-ठीक व्यवहार न करनेसे जमीनको नुकसान पहुँचनेका डर रहता है। इसलिए इस खादका इस्तेमाल जहाँतक हो सके और सब खादोंके बाद कमीकी पूर्ति करनेमें ही करना चाहिये।

अच्छे बीजोंको काममें लानेसे भी जमीन की पैदावार बढ़ती है। इसके द्वारा १० से १५ फी-सदीतक पैदावार बढ़ायी जा सकती है।

खेतीकी उन्नतिके लिए आविष्कृत यन्त्रों, जैसे ट्रैक्टर, फसल काटने और दौरी करनेकी मशीनोंका व्यवहार करना भी लाभदायक है। किन्तु इस काममें पूरी सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। अनुचित रीतिसे ट्रैक्टरका व्यवहार करनेसे जमीन कभी-कभी बर्बाद हो जाती है। इस-लिए यन्त्रों द्वारा खेतीका काम प्रारम्भ करनेके लिए बड़ी होशियारी और सावधानीकी जरूरत है।

जमीनके लिए हानिकारक जो कारण दिखायी पड़ते हैं उनमें मिट्टीकी उर्वराशक्तिका नष्ट होना सबसे अधिक घातक है। इन कारणोंको रोकनेकी आवश्यकता है। हमलोगोंकी मूर्खताके कारण यह सब अनर्थ हो रहा है। यह बात ठीक कही गयी है कि भगवान्‌ने मरुभूमिकी रचना स्वयं नहीं की है। जमीनको समतल बनाकर बाँध डालकर पानीकी रुकावट कर देनेसे जमीनका दोष दूर किया जा सकता है। बड़े पैमानेमें जङ्गल लगाकर भी यह समस्या हल की जा सकती है।

और एक विषयमें भी किसानोंकी सहायता करनेकी जरूरत है। इस समय वे ऋणके भारसे दबे हुए हैं। कम सूदपर रुपये देकर उनका

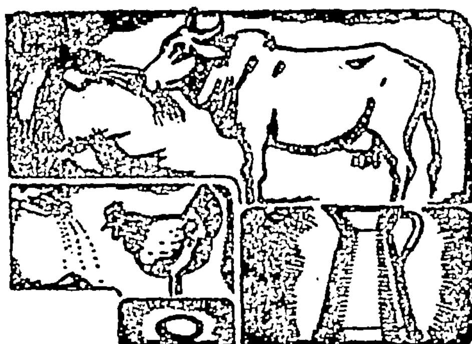
यह कष्ट दूर करनेकी आवश्यकता है। इसके सिवा चीजें ले जाने, लाने और खरीदने-बेचनेकी सुविधा कर देने तथा पैदावारकी चीजोंकी कमसे कम दर बाँधकर भी किसानोंकी सहायता की जा सकती है।

हमारे यहाँ इस समय जमीनकी जैसी व्यवस्था है वैसी ही यदि वह बनी रहेगी तो किसानोंके लिए उन्नतिकी सुविधाएँ प्राप्त करना सम्भव है या नहीं इस विषयमें तर्क किया जा सकता है। वर्तमान समयमें किसान जोती-बोयी जानेवाली कुल जमीनके एक तिहाई हिस्सेके मालिक हैं। लन्दनके 'एकानामिस्ट' नामक समाचारपत्रने लिखा था कि भारतवर्षकी खेतीको अच्छी दशामें लानेके लिए घोर विप्लवात्मक परिवर्तन करना होगा। उसकी इस रायसे इस विषयके बहुतसे जानकार विद्वान सहमत हैं। इस विप्लवका मतलब यह है कि जोती-बोयी जानेवाली सब जमीनका मालिकाना हक किसानोंके हाथमें सौंप दिया जाय। इसके साथ ही उसका ऐसा प्रबन्ध करना होगा जिसमें वह टुकड़ोंमें न बँट जाय। हर किसानके पास उसके निर्वाहके लिए काफी जमीन रहे। चक जमीन न रहकर छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बँटी रहनेका जो फल हो रहा है उसे हमलोग अच्छी तरह देख रहे हैं। आजकलके जमींदार ठीक तरहसे जमीनकी देखभाल नहीं करते, शहरोंमें रहकर आमोद-प्रमोदमें समय बर्बाद करते हैं। यह रोग यहाँके जमींदारोंमें बहुत पुराना हो गया है इसलिए इसे दूर करनेके लिए घोर परिवर्तन करना जरूरी है। यह काम भी उस विप्लवके ही अन्तर्गत है। सबसे अधिक जरूरत इस बातकी है कि खेतिहरोंको ऐसा अधिकार मिल जाय जिसे पाकर वे अपनेको उसका मालिक समझ सकें, उनके पैदा किये हुए गल्लेमें कोई हिस्सा बँटानेवाला न हो। ऐसा अधिकार मिल जानेपर ही किसान उत्साहित होकर खेतीकी उन्नति करनेमें तत्पर हो सकेंगे। तभी इस देशकी कृषि-व्यवस्था उन्नत दशामें पहुँचकर उदाहरणकी वस्तु बन सकेगी।

अबतक हमने गल्ला, साग-तरकारी और फलोंकी पैदावारको बढ़ानेके बारेमें विचार किया है, किन्तु इनके सिवा अन्यान्य खाद्य वस्तुएँ भी हैं

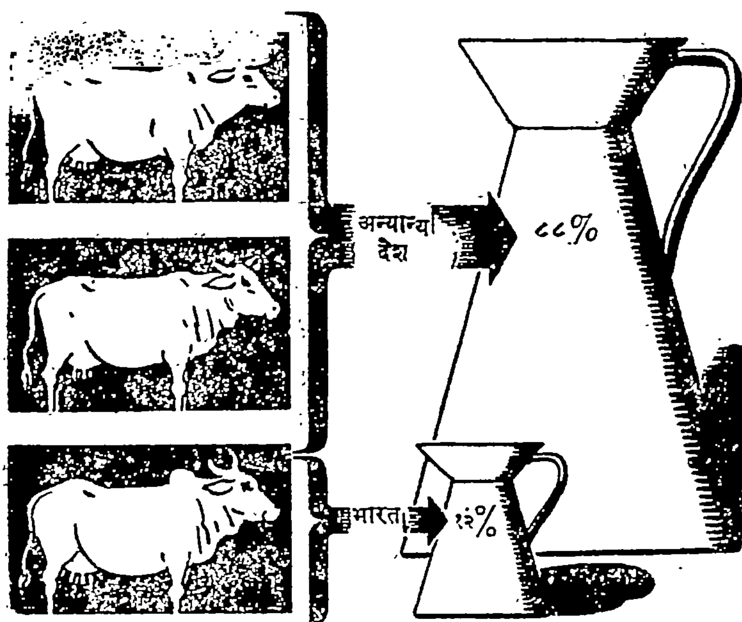
जैसे दूध, मांस-मछली और अण्डे। ये सब चीजें एक तरहसे जमीनकी पैदावार हैं किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे नहीं बल्कि परोक्ष रूपसे। जमीनसे जो चीजें पैदा होती हैं, उनमेंसे बहुत-सी चीजें हमलोग स्वयं न खाकर पशुओं, भेड़ों और मुर्गियोंको खिलाते हैं, बादमें वे हमें दूध, मांस और अण्डोंके रूपमें खूराक देती हैं।

दूधके बारेमें हम पहले ही कह आये हैं कि यह बड़ा ही मूल्यवान भोजन है क्योंकि इसमें प्रायः सब तरहके पौष्टिक तत्त्व पाये जाते हैं। बच्चोंके लिए तो यह विशेष रूपसे जरूरी चीज है। दूधके मामलेमें हम कितने पिछड़े हुए हैं और इस समय देशमें जो दूध पैदा होता है उसका चार-पाँच गुना अधिक दूध हमारे लिए जरूरी है, यह बात हम पहले ही कह आये हैं। हमारे देशमें प्रायः २० करोड़ पालतू पशु हैं—अर्थात् प्रत्येक दो आदमीके लिए एक पशु। यह संख्या संसारके कुल पशुओंकी संख्याकी तिहाई है। इतनी बड़ी संख्या होते हुए भी दूधकी कमी है।



इसका प्रधान कारण यह है कि हमारे देशकी गाय औसतन एक सेर रोजाना दूध देती है; किन्तु हालैण्डकी एक गाय औसतन सवादस सेर, इंग्लैण्डकी साढ़े सात सेर और न्यूजीलैण्डकी सात सेर दूध देती है। यह सच है कि हमारे देशके दूधमें जितने परिमाणमें स्नेह पदार्थ पाया

जाता है अन्य देशोंके दूधमें उतना नहीं। इस देशकी गायके दूधमें पश्चिमी देशोंकी गायके दूधकी अपेक्षा स्नेह पदार्थ २५ से ५० प्रतिशततक अधिक



होता है और भैंसके दूधमें अन्यान्य देशोंकी भैंसके दूधकी अपेक्षा दूना अधिक स्नेह पदार्थ होता है। जो हो, यह तो तय है कि समूचे संसारके पालतू पशुओंका २८·५ प्रतिशत भाग पालतू पशु-संख्या भारतवर्षमें अवश्य है किन्तु संसारभरमें जो दूध पैदा होता है उसका केवल १२ प्रतिशत भाग ही हमें प्राप्त है। जर्मनी २ करोड़ ५० लाख मवेशियोंसे जितना दूध पैदा करता है उतना दूध हम २० करोड़ मवेशियोंसे पैदा करते हैं।

वर्त्तमान शोचनीय दशाका प्रतिकार किस प्रकार किया जा सकता है? यह बात स्पष्ट है कि हमारे देशके मवेशियोंकी अवस्था बहुत ही

शोचनीय है और उनके लिए भी हमलोगोंकी तरह अच्छी खूराककी जरूरत है। इस समय उन्हें भी हमारी ही तरह आधपेट चारा मिल रहा है। इस दशाको सुधारनेके लिए सबसे पहले उन्हें खूराक अधिक देनेकी जरूरत है। घास, भूसा, भूसी, चूनी, कराई, खली आदि जो चीजें मवेशियोंको खिलायी जाती हैं, सबकी मात्रा बढ़ानेकी आवश्यकता है। उसके बाद अच्छी नस्लकी गायें पालकर उनसे हृष्ट-पुष्ट अच्छी नस्लके बच्चे पैदा करानेकी ओर ध्यान देनेकी जरूरत है। यह सब प्रबन्ध हो जानेपर यहाँके दूधकी पैदावार बढ़ जायगी। हालैण्ड, इंगलैण्ड, न्यूजीलैण्डकी समानता यहाँकी गायें भले ही न कर सकें, पर यह निश्चय है कि दूधका परिमाण बहुत बढ़ जायगा।

इस उन्नतिका अर्थ है, वर्तमान खेतीके तरीकोंको बदलकर मिश्रित कृषि-प्रणालीके अनुसार काम करना ; यानी फसलोंकी पैदावारके साथ-साथ गोपालनका प्रचार करना। संसारमें हर जगह खेतीका प्रारम्भ अनाजके उत्पादनसे हुआ है। उसके बाद किसानोंके जीवनमें गोपालनकी समस्या उपस्थित हुई। जिसे मिश्रित कृषिपद्धति कहा जाता है, वह इसी प्रकार किसानोंके जीवनमें आ गयी और इसी पद्धतिके अनुसार खेतीका काम शुरू हुआ। खासकर भारतके लिए तो यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी है। इसका कारण बतलाते हुए सर जान रसलने लिखा है, 'गल्लेकी खेती विरल बस्तीके गाँवोंमें जहाँ बिल्कुल खुले हुए मैदान हों ताकि बड़े बड़े यन्त्र इत्यादिसे काम लिया जा सके—थोड़े खर्चमें की जा सकती है और अच्छा लाभ हो सकता है, किन्तु छोटे खेतोंके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही जा सकती। वहाँ तो केवल पशुओं, अण्डों, फलों और तरकारियोंको ही पैदा किया जा सकता है। यदि किसान जानकार हो और प्रबन्ध अच्छा करे तो इससे भी उसे भरपूर फायदा हो सकता है'।

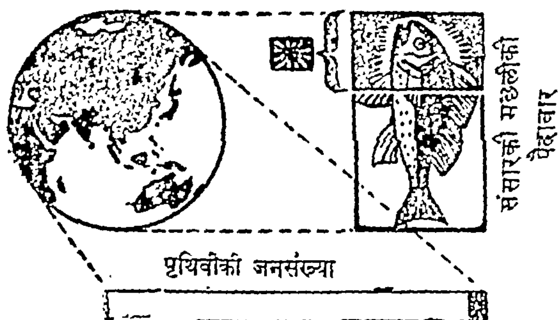
वनस्पतिकी अपेक्षा जानवरोंमें प्रोटीन विशेष पोषक होता है, इसलिए मांस, मछली और अण्डोंका उत्पादन अधिक आवश्यक समझा जाता है। मांस, मछली और अण्डे खानेवालोंके लिए ये चीजें बहुत ही मूल्य-

वान हैं। इन्हें सन्तुलित भोजन कहा जाता है। हमारे देशका अधिकांश भाग शाकाहारी है फिर भी आवश्यकतानुसार उसकी पैदावार नहीं है। आजकल यहाँ मिश्रित कृषि-प्रणाली कुछ-कुछ चालू हुई है। यदि वह बड़े पैमानेमें चालू की जाय तो दूध भी अधिक पैदा होने लग जायगा और दूध, मांस, अण्डेकी पैदावार भी बहुत बढ़ जायगी।

मछलीकी पैदावार बढ़ाना सबसे अधिक आसान है। वर्तमान समयमें समुद्री मछलियोंकी पैदावार ४ लाख ५० हजार टन है और नदियोंकी मछलियोंकी पैदावार २ लाख २० हजार टन। यदि प्रयत्न किया जाय तो समुद्री मछलियोंकी पैदावार इससे कई गुनी अधिक बढ़ सकती है। नदियों और तालाबोंकी मछलियोंके उत्पादनमें भी वृद्धि की जा सकती है। गहरे समुद्रमें बड़ी मछलियाँ पकड़नेके लिए मछुआहोंके पास बड़े जालको खींचनेवाली बड़ी नौकाओंका और उन मछलियोंको बाजारकी मण्डियोंमें लानेके लिए तेज रफ्तारवाली मोटर लंचोंका होना जरूरी है। खानेवालोंके हाथतक पहुँचानेके लिए ऐसा साधन मौजूद रहना चाहिये जिससे वे मछलियाँ सड़ने न पावें। अभीतक यहाँ इस बातकी बहुत बड़ी कमी है। हालहीमें बम्बईके मछुआहोंने शिकायत की थी कि उनकी बहुत-सी मछलियाँ सड़नेसे बचानेवाले द्रव्य न रहनेके कारण सड़ जाती हैं और उनकी मिहनत बेकार हो जाती है।

मछलीकी पैदावार बढ़नेपर हमारी खूराक अधिक पुष्टिकारक तो हो ही जायगी, दूसरा लाभ यह होगा कि उससे मछलीके कलेजेका तेल अधिक मात्रामें निकाला जा सकेगा। शार्क मछलीके कलेजेके तेलकी यहाँ बहुत बड़ी जरूरत है। हमारे देशवासी विटामिनकी कमीके कारण नाना प्रकारके रोगोंसे पीड़ित हैं, उन रोगोंको दूर करनेके लिए शार्कके कलेजेका तेल विशेष गुणकारी होगा। यह मालूम हुआ है कि भारतकी शार्क मछलियोंके तेलमें कॉड लीवर तेलकी अपेक्षा १० से २० गुना अधिक विटामिन 'ए' होता है। जापानकी आबादी संसारकी ३.२ फीसदी है। इतना छोटा देश होते हुए भी वहाँके लोग मछलीकी पदावार संसारकी

पैदावारका एक तिहाई भाग करते हैं। हमारे देशकी तरह वहाँके लोग भी चावल ही अधिक खाते हैं, किन्तु वे अपनी कमीकी पूर्ति मछलियोंसे कर लेते हैं। जापानियों और भारतवासियोंकी औसत आयु और बलमें जो अन्तर है उसका एक कारण यह भी है कि वहाँके लोग हमलोगोंकी अपेक्षा अधिक मछली खाते हैं। इस विषयमें हम जापानियोंसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।



खेतसे रसोईघरतक

११

खाद्य पदार्थोंको अधिक मात्रामें पैदा करना भोजन करानेके कामकी पहली सीढ़ी है। खाद्य पदार्थोंको केवल उत्पन्न कर लेनेसे ही काम नहीं चलेगा। उसे भूखोंके मुँहतक पहुँचानेका काम भी कम जरूरी नहीं है। इसीसे जिन-जिन क्रियाओंकी मदद लेनेकी जरूरत है उनके सुन्दर सञ्चालनके ऊपर ही लोगोंका भोजन पाना अथवा उपवास करना निर्भर है।

इस सम्बन्धमें यातायातकी समस्या प्रधान है। पहले गल्लेको गाँवोंसे स्थानीय मण्डीमें ले जाना पड़ता है, उसके बाद वहाँसे शहर, जिला, प्रान्त जहाँ-जहाँ उसका चालान करना जरूरी होता है वहाँ पहुँचा देना पड़ता है। यह काम अनेक तरहसे किया जा सकता है। कुछ रास्ता बैलगाड़ीसे, कुछ रास्ता मोटरट्रकसे, कुछ रेलसे और कुछ रास्ता नौकासे तय करके साधारणतः खाद्य पदार्थोंको निश्चित स्थानपर पहुँचाना पड़ता है। इसलिए गल्लेके यातायातके लिए सड़क, रेल और नौकाओंकी काफी सहूलियत होनी चाहिये। लेकिन इस विषयमें भी अन्यान्य विषयोंकी तरह बहुत कुछ करनेकी जरूरत है। हमारे देशका रकबा लगभग १५ लाख ८० हजार वर्गमील है। इस विशाल रकबेमें ४१ हजार मील लम्बा रेलपथ है जब कि एशियाको छोड़कर शेष यूरोपमें जो कि रकबेमें भारतवर्षसे कुछ ही अधिक है—१ लाख ९० हजार मील रेलपथका विस्तार है। ब्रिटिश भारतमें प्रति १०० वर्गमील रकबेमें ३५ मील रेलपथ है। किन्तु जापान, अमेरिका और ब्रिटेनमें क्रमशः ३००, २०० और १०० मील लम्बा रेलपथ प्रति १०० वर्गमील रकबेमें है। इसीसे पन्द्रहवर्षीय

योजनामें रेलपथ ५० प्रतिशत और सड़कें १०० प्रतिशत बढ़ानेका प्रस्ताव किया गया है।

किन्तु केवल रेलपथ और सड़कें बनानेसे ही काम नहीं चल सकता ; खाद्य सामग्री ढोनेके लिए रेलके डब्बे और मोटरट्रक आदि बनानेकी भी जरूरत होगी। भारतवर्षमें यातायातके लिए प्रधान साधन बैलगाड़ियाँ हैं। इन बैलगाड़ियोंके पहिये लोहे या लकड़ीके बनाये जाते हैं जिनका बोझ सड़क और बैल दोनोंपर बहुत अधिक पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि देहातोंको समृद्धिशाली बनानेके लिए बैलगाड़ियाँ अभी बीसों वर्षतक काममें आवेंगी। किन्तु उनके पहियोंपर हवा भरे हुए टायरोंका चढ़ाना जरूरी है। इससे बैलोंको भी आराम पहुँचेगा और सड़कें भी खराब न होंगी।

खाद्य सामग्री रखनेके लिए उचित स्थानोंका होना भी बहुत जरूरी है। वर्त्तमान समयमें इसकी बहुत ही बुरी व्यवस्था है; इससे गल्लेको बड़ी क्षति पहुँचती है। गल्लेका बहुत बड़ा हिस्सा चूहे, घुन और कीड़े-मकोड़े खा जाते हैं। गल्लेके गोदाम अन्धकारमय रहनेके कारण भी बहुत-सा गल्ला सड़ जाता है। इसलिए गोदाममें रोशनी और हवाका पहुँचना बहुत जरूरी है। हिसाब लगाकर देखा गया है, सालमें प्रायः २३ लाख टन गल्ला बर्बाद हो जाता है, जिसमें करीब १० लाख टन तो सिर्फ चूहे खा जाते हैं। इसलिए गल्ला रखनेके लिए उचित स्थानोंका प्रबन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है।

गल्लेको खेतसे रसोईघरतक पहुँचानेके मार्गमें बिक्रीका काम भी बहुत जरूरी है। खाद्य सामग्री पैदा करनेवालेके पाससे भोक्ताके पासतक पहुँचानेमें उसे कई हाथोंसे होकर गुजरना पड़ता है। इस समय इस तरहके बीचवाले आदमी जरूरतसे ज्यादा मौजूद हैं और उनमें प्रत्येक आदमी आढ़त और दलालीके रूपमें खासा नफा उठाता है। इसका परिणाम यह होता है कि हम और आप अपने भोजनके लिए गल्ला खरीदनेमें यदि एक रुपया खर्च करते हैं तो उसमें सिर्फ आठ या दस

आना किसानको मिलता है, शेष पैसा बीचके दलालोंके पेटमें चला जाता है। किसानसे अपनी आवश्यकताके अनुसार पैदावार बढ़ानेका काम



लेनेके लिए ऐसा प्रबन्ध होना जरूरी है जिसमें उसे उसकी पैदावारका उचित मूल्य मिला करे—बीचके दलालोंकी दाल न गले। यह काम जगह-जगह बिक्रीका केन्द्र स्थापित करके किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यकतानुसार व्यवसायियोंको लाइसेंस देना और गल्लेकी दर बाँध देना होगा। ऐसा हर तरहका प्रबन्ध करना होगा जिसमें विवेकहीन दलालों द्वारा अशिक्षित भोलेभाले किसान ठगे न जा सकें।

किसानके लिए केवल यही जरूरी नहीं है कि उसे अपनी पैदावारका उचित मूल्य मिल जाय बल्कि उसके साथ ही साथ यह भी देखना होगा कि उस मूल्यका दुरुपयोग न होने पावे। गल्लेकी दर निश्चित करके वर्तमान दोषोंको दूर किया जा सकता है। इससे किसानोंको उचित मूल्य मिलने लगेगा। पिछले जमानेमें अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें कोई अधिकार न रहनेके कारण कई बार कीमत इतनी गिर गयी कि किसान बर्बाद हो गये। फल यह हुआ कि किसानोंका उत्साह भङ्ग हो गया। कीमतकी

स्थिति सुधारनेके लिए यह जरूरी है कि सरकार स्वयं पैदावारकी चीजें खरीदकर गोदामोंमें दुर्दिनके समयके लिए सुरक्षित रखे। अमेरिका और अन्यान्य देशोंमें ऐसा ही प्रबन्ध है। ऐसा करनेसे खाद्य-सामग्रीकी दरमें किसी तरहकी गड़बड़ी नहीं हो पाती और दुर्दिनके समय किसी तरहकी कठिनाई उपस्थित नहीं होती। इसीसे खाद्य और खेतीके बारेमें संयुक्तराष्ट्रोंके सम्मेलनके एक प्रस्तावमें यह सिफारिश की गयी थी कि समूचे संसारके लिए एक खाद्य-भण्डार बनाया जाय ताकि संसारके जिस किसी भागमें जिस किसी वस्तुकी जरूरत पड़े वहाँ वह शीघ्रसे शीघ्र भेजी जा सके। इस प्रस्तावको काममें लानेके लिए सम्मेलनने एक समिति बनानेकी भी सिफारिश की थी। हमारे देशकी खाद्य पदार्थ-नीति-निर्धारिणी समितिने भी एक केन्द्रीय भण्डार बनानेपर बहुत जोर दिया था। उसने अपनी रिपोर्टमें लिखा था कि इस भण्डारमें कमसे कम ५ लाख टन अनाज बाहरसे मँगाकर मौजूद रखना चाहिये। समितिने अपनी रिपोर्टमें यह भी लिखा था कि किसानोंके यहाँसे खरीददारके पास अधिकसे अधिक मात्रामें अनाज पहुँचानेका उपाय है—एक केन्द्रीय खाद्य भण्डारका बनाना। किन्तु दुर्भाग्यवश यह काम अभीतक नहीं हो सका। यदि इस तरहका भण्डार गत वर्ष रहा होता तो हमारे देशके २५ लाख आदमी (दुर्भिक्ष जाँच समितिके कथनानुसार) बङ्गाल प्रान्तमें भूख और भूखसे पैदा होनेवाली बीमारियोंके कारण मौतके मुँहमें न चले जाते।

उक्त भण्डारके साथ ही एक और बात विशेष सम्बद्ध है; वह है खाद्य संरक्षण। अन्यान्य देशोंमें यह प्रणाली विशेष उन्नति कर चुकी है। खाद्य संरक्षणका अनुभूत उपाय है उसे बर्फके समान ठण्ढा कर देना। मांस, मछली, दूध और दूधसे बनी चीजों, तरकारियों तथा फलोंकी रक्षाके लिए यह उपाय विशेष उपयोगी है। हमारे देशमें बम्बई-जैसे बड़े शहरोंमें म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे जल्द सड़नेवाली चीजोंको सड़नेसे बचानेके लिए ठण्ढी कोठरियाँ बनायी गयी हैं। उनमें सड़नेवाली चीजें रखकर बचायी जाती हैं। हमारे देशके कुछ धनीपात्रोंने भी अपने

घरोंमें 'रेफ्रिजरेटर' रखनेका प्रबन्ध किया है। अमेरिकाके गाँवोंतकमें ऐसी अलमारियोंका प्रयोग किया जाता है और आजकल घरोंमें व्यवहारके लिए साधारण श्रेणीका सस्ता छोटामोटा 'रेफ्रिजरेटर' भी पाया जाता है। ब्रिटेनमें भी गृहस्थीमें इस्तेमालके लिए खाद्य पदार्थोंको जल्दसे जल्द बर्फके समान शीतल बनानेके तरीकोंमें आश्चर्यजनक उन्नति की गयी है। एक विशेषज्ञका कहना है कि खाद्य पदार्थको जितनी जल्दी हो सके बर्फके समान शीतल कर देना चाहिये। इससे खाद्य पदार्थका स्वाद नहीं बिगड़ता और विटामिन भी नष्ट नहीं होते। नरम फल जैसे स्ट्रावेरीज और राजवेरीजका ४५ सेकेण्डके अन्दर, तरकारियोंका ५० से ५५ सेकेण्ड, मछलीका ६० सेकेण्ड और मांसका ९० सेकेण्डके भीतर बर्फ जैसा ठण्ढा करना जरूरी है। अण्डोंको ठण्ढा करके डेढ़ सालतक ज्योंका त्यों रखा जाता है। टमाटर और केलोंको ठण्ढा किया बर्फाया गया और नौ महीनेतक सुरक्षित रखा जा सका। कच्चे टमाटरको इस उपायसे सात महीने तक रखा गया और उसके बाद उसे बाहर निकालकर पकाया गया और अन्तमें बर्फको पिघलाया गया। इस प्रयोगमें खर्च भी नाममात्रका ही पड़ता है अर्थात् इस प्रकार ठण्ढा करनेमें प्रति पौण्ड सालाना एक आनासे अधिक खर्च नहीं होता।

खाद्य-वस्तुकी रक्षा करनेका एक उपाय और है। वह है खाद्य-वस्तुओंको सुखाकर रखना। इस तरीकेको अंग्रेजीमें 'डिहाइड्रेशन' कहते हैं। इसके माने हैं पानीका दूर करना। अधिकांश खाद्य-वस्तुओंमें पानीका अंश बहुत अधिक रहता है। चावल, दाल आदिमें १० से १५ प्रतिशत, मांस-मछली आदिमें ७० से ८० प्रतिशत तथा फलों और तरकारियोंमें ७५ से ९५ प्रतिशत जलका अंश रहता है।

खाद्य वस्तुओंको सुखानेकी रीति एक प्रकारसे हमारे देशमें बहुत दिनोंसे चली आ रही है। आपने सूखी मछली, सूखे केले, खूबानी, अञ्जीर, आम, बैंगन और खजूर अवश्य खाये होंगे। धूपमें सुखाकर इनके अन्दरका पानी दूर कर दिया जाता है। भारतवर्षके किसी-किसी

भागमें इस रीतिसे खाद्य-वस्तुओंको सुखाकर खानेकी प्रथा विशेष प्रचलित है। फल, तरकारी और मछली आदि जो चीजें बहुत जल्द खराब हो जानेवाली हैं उन्हें कई हफ्ते या कई महीने बाद खानेकी सुविधाके लिए सुरक्षित रखना ही इस पुरानी प्रथाका उद्देश्य है।

युद्धमें पागलपन भी पाया जाता है और बुराई भी; इससे शायद ही कभी किसीकी भलाई होती है। किन्तु जहाँ इससे बहुत बड़ा नुकसान होता है वहाँ कुछ फायदा भी हो जाता है। द्वितीय महायुद्धसे हमारा जो थोड़ा-सा उपकार हुआ है वह यही कि खाद्य-पदार्थोंके सुखानेके विषयमें अत्यधिक उन्नति हुई है। वर्त्तमान युद्धके बड़े मसलोंमें जिस तरहका फौजको एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना जरूरी मसला है उसी तरह फौजकी खूराकको जुटाना भी खास मसला है। तरकारी और फल जैसी खाद्य-वस्तुओंके लिए जहाजों और रेलगाड़ियोंमें बहुत जगह चाहिये; किन्तु यदि उन्हें सुखा लिया जाय तो स्वभावतः उनका वजन हल्का और आकार छोटा हो जाता है और उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना बहुत आसान हो जाता है।

यही कारण है कि आजकल भारतवर्षमें दूसरे देशोंकी तरह सुखानेका काम बड़े पैमानेपर जारी है किन्तु धूपमें सुखानेका काम नहीं बल्कि पहले खाद्यवस्तुओंको गरम पानीमें खौलाया जाता है और फिर पाँच-छः घण्टेतक उनपर गरम हवा दी जाती है। सन् १९४३ में केवल भारतमें फौजके व्यवहारके लिए १ लाख ५० हजार टन आलू सुखाया गया था।

आजकल मांस और साग-सब्जीको सुखानेके पहले पका लिया जाता है, बाद उन्हें दबाया जाता है। दबानेके बाद वे टाफी (एक तरहकी विलायती मिठाई) के टुकड़ोंकी तरह दिखायी पडने लगती हैं। जब आप उन्हें खाना चाहें तो उस टुकड़ेको खौलते हुए पानीके बर्तनमें डाल दें। आप देखेंगे कि धीरे-धीरे वह अपनी असली शकलमें आने लगेगा और दो-तीन मिनटमें ही उसकी पूर्ण रीतिसे असली शकल और महँक हो जायगी और वह खाने योग्य हो जायगा। किन्तु सुखायी हुई चीजोंकी

जब कुनूरमें परीक्षा ली गयी थी तब मालूम हुआ था कि सुखायी हुई चीज कुछ महीनोंतक रखनेसे उसमेंके विटामिन बहुत कुछ कम हो जाते हैं। कभी-कभी स्वादमें भी अन्तर पड़ जाता है। लेकिन यह विश्वास किया जाता है कि सुखानेकी एक ऐसी उन्नत रीति आविष्कृत हुई है जिसके द्वारा विटामिनकी इतनी अधिक क्षति न हो सकेगी और स्वाद तथा गन्धमें भी इतना अन्तर नहीं पड़ेगा।

युद्धकालके बाद युद्धकालमें आविष्कार की हुई यह रीति स्थायी रूपसे मनुष्यके काम आवेगी। आम इत्यादि जो चीजें सालमें सिर्फ कुछ महीनोंमें काफी तादादमें पैदा होती हैं उन्हें अब सालभरतक आविष्कृत रीतिसे सुरक्षित रख सकेंगे और फल तथा तरकारियोंको दूर देशोंमें भेजकर लाभ उठा सकेंगे।

खानेकी चीजोंको सुरक्षित रखनेका एक और उपाय है—उन्हें डब्बोंमें बन्द करके रखना। हमारे देशमें खानेकी जितनी डब्बा बन्द चीजें मिलती हैं उनमें अधिकांश चीजें बाहरसे आयी हुई रहती हैं। इसीसे उन्हें केवल धनीपात्र ही खरीद सकते हैं, गरीब नहीं। भारतवर्षमें यह काम आसानीसे किया जा सकता है। इसके द्वारा खानेकी चीजें सुरक्षित रखी जा सकती हैं और किसी चीजकी कमी दूर की जा सकती है।

और भी जिन तरीकोंको काममें लाया जा सकता है उनमें एक यह भी है कि नाश्तेकी चीजें, दलिया और कार्नफ्लेकको अन्नसे तैयार किया जाय।

पश्चिमी देशोंमें खाद्य पदार्थोंकी पैदावार बड़ी तेजीसे आधुनिक उद्योगके रूपमें परिणत होती जा रही है। इस विषयमें सबसे बड़ी उन्नति यह हुई है कि विटामिनको कृत्रिम उपायोंसे तैयार किया जाने लगा है। इस प्रकारके विटामिनको कृत्रिम इसलिए कहा गया है क्योंकि ये कृत्रिम उपायोंसे तैयार किये जाते हैं। जिस तरहके स्वाभाविक विटामिन दूध और हरी तरकारियोंमें मिलते हैं ये विटामिन वैसे नहीं

होते। ये विटामिन तैयार किये जाते हैं रासायनिक क्रियाओं द्वारा कारखानोंमें। लोगोंकी धारणा है कि जैसी शक्ति हमें प्राकृतिक खाद्यपदार्थोंसे मिलती है वैसी ही शक्ति कृत्रिम खाद्यवस्तुओंमें भी पायी जाती है। युद्धके बाद उन मूल्यवान पौष्टिक खाद्यवस्तुओंको इतना समुन्नत बना देना चाहिये कि वे सर्वसाधारणतक पहुँच सकें ताकि यदि लोगोंको भूखों रहनेकी समस्या उपस्थित हो तो कमसे कम उन्हें विटामिन तो मिल सके।

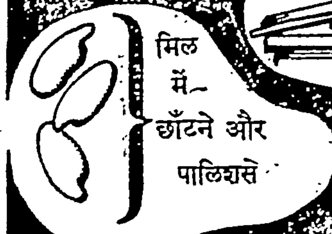
इनसे भी विप्लवात्मक परिवर्तन होना असम्भव नहीं है। अमेरिकाका अन्तिम आविष्कार यह हुआ है कि वहाँ कृत्रिम मांस बनाया जाने लगा है। वहाँके रसायनशास्त्रियोंने खमीरसे एक ऐसी चीज बनानेमें सफलता प्राप्त की है जिसका स्वाद और गन्ध जानवरोंके मांसके समान है। दावा यह है कि कृत्रिम मांस यदि यथेष्ट परिमाणमें तैयार किया जाने लगेगा तो वह असली मांससे सस्ते मूल्यमें बाजारमें बेचा जा सकेगा। भारतवर्षके समान निरामिषभोजी देशके लिए यह समाधान वास्तवमें निहायत उम्दा है। हम सब मांसके स्वादका उपभोग कर सकेंगे और भेड़-बकरी तथा गाय-भैंसके बच्चों अथवा मुर्गियोंको कटवानेकी आवश्यकता नहीं रह जायगी। भला इससे बढ़कर बढ़िया आविष्कार और क्या हो सकता है!



खाना किस प्रकार नष्ट होता है



खुले बर्तनमें औरअधिक देरतक पकानेसे



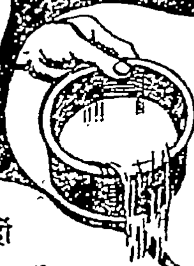
मिल में छाँटने और पालिशसे



बेकिंग पाउडरके व्यवहारसे



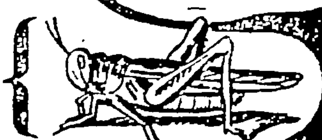
मुख्य छिलका उतार देनेसे



पकी हुई तरकारी या चावलका रसा बहा देनेसे



चूहों और अन्य कीड़ों द्वारा



खाद्यका सद्व्यवहार

१२

हम यह देख चुके हैं कि हम अपने देशमें खाद्य-पदार्थोंकी पैदावार किन-किन उपायोंसे बढ़ा सकते हैं। किन्तु उन उपायोंसे सफलता प्राप्त करनेमें कुछ समय लगेगा। इस बीच हमें वर्तमान खाद्य-पदार्थोंका उचित रीतिसे व्यवहार करनेकी पूरी चेष्टा करनेकी जरूरत है। क्या हम ऐसा कर रहे हैं? दुःख है कि हम वैसा नहीं कर रहे हैं। वर्तमान समयमें इस देशमें जिस परिमाणमें खानेकी चीजें पैदा हो रही हैं उनका बहुत बड़ा भाग हम नष्ट कर देते हैं। यहाँ मैं उन नष्ट होनेवाले छोटे टुकड़ोंकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ जो हम भोजन कर चुकनेके बाद थाली या रकाबीमें बिना खाये छोड़ देते हैं। मैं उस नष्ट होनेवाली खूराककी चर्चा कर रहा हूँ जो रसोईघरमें पहुँचनेके पहले ही नष्ट हो जाती है।

चौथे अध्यायमें देखा जा चुका है कि हम अनाजके उत्कृष्ट पुष्टिकारक भागको किस तरह नष्ट कर देते हैं। वहाँ इस बातकी भी आलोचना की जा चुकी है कि हम चावलके ऊपरवाले बारीक छिलके और बीजके प्रोटीन, विटामिन और लवणको मशीनकी अनावश्यक कुटाई, छँटाई और पालिश करके नष्ट कर देते हैं। पहले धानको अधपका करके उसके बाद हाथ या मशीनसे तीन-चार बार कूटने-छाँटनेके बदले सिर्फ एक बार कूटकर काममें लानेसे वह बर्बादी नहीं हो सकती। इसीसे गान्धीजी कई वर्षसे बराबर यह कहते आ रहे हैं कि हमें मशीन द्वारा कूटे हुए चावलके बदले हाथसे कूटा हुआ चावल खाना चाहिये। आजकल भारतवर्षमें अन्नकी कमीके कारण दुर्भिक्षकी ऐसी बाढ़ है कि सरकारतकको यह व्यर्थ बर्बादी रोकनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई है और

किसी-किसी प्रान्तमें उसने मशीन द्वारा चावलकी जरूरतसे ज्यादा छँटाई बन्द करनेकी आज्ञा जारी कर दी है। जापानियोंने हमसे बहुत पहले ही इसका महत्व समझ लिया था। वहाँके लोग भी पहले हमलोगोंकी तरह मशीनसे कूटा, छाँटा और पालिश किया हुआ चावल खाते थे; किन्तु जब उन लोगोंने देखा कि यह तो शरीरके लिए बिलकुल ही हितकर नहीं है तो उन्होंने अपने सम्राट् हिरोहितोके द्वारा यह आज्ञा निकलवा दी कि कम कूटा और छँटा हुआ चावल काममें लाया जाय। फल यह हुआ कि सब जापानियोंने सम्राट्की आज्ञा मान ली। इस मामलेमें भारतवर्षके किसी-किसी प्रान्तके निवासियोंके अपराधकी सीमा नहीं है। किन्तु कई प्रान्तोंमें आज भी हाथका कूटा हुआ चावल खानेकी प्रथा विशेष प्रचलित है। जैसे आसाममें आज भी ९७ प्रतिशत हाथसे कूटा हुआ चावल खाया जाता है। उसके बाद संयुक्तप्रान्त है; इस प्रान्तमें ९२ प्रतिशत हाथसे कूटा हुआ चावल काममें लाया जाता है। इसी प्रकार बिहार और उड़ीसामें ९० प्रतिशत, बङ्गालमें ८४, मध्यप्रदेशमें ७० और दुःखकी बात है कि मद्रासमें केवल ३८ प्रतिशत हाथसे कूटा हुआ चावल खाया जाता है।

खानेकी चीजोंमें साग-तरकारी भी ऐसी चीज है जिससे हम पूरा लाभ नहीं उठाते। तरकारी पकाते समय हम प्रायः बेकिंग पाउडर (खमीर उठानेके सफूफ) का इस्तेमाल करते हैं जिससे विटामिन 'बी' और 'सी' नष्ट हो जाते हैं। विटामिन 'सी' तो बड़ा ही नाजुक होता है। वह पाँच मिनटके भीतर ही नष्ट हो सकता है। इसलिए बेकिंग पाउडरका इस्तेमाल करना ठीक नहीं है। खुले बर्तनोंमें पकानेसे भी विटामिन जलकर हवामें मिल जाते हैं। बर्तनका मुँह बन्द करके पकानेसे यह बर्बादी नहीं हो सकती। सच तो यह है कि भोजनकी वस्तुओंको जरूरतसे ज्यादा पकानेसे विटामिनके नष्ट होनेका डर रहता है। तो क्या साग-तरकारी कच्ची ही खानी चाहिये? बहुतसी तरकारियाँ ऐसी हैं जिन्हे हम बिना पकाये ही खाना उत्तम समझते हैं, किन्तु खानेके पहले यह देख लेना जरूरी है कि

वे ठीक तरहसे धोकर साफ की गयी हैं या नहीं। बिना धोयी हुई या ठीक तरहसे न धोयी हुई तरकारी खानेसे विषाक्त रोग होनेका भय रहता है।

तरकारियों और फलोंके छिलके यदि खाने योग्य हों तो उन्हें फेंकना नहीं चाहिये। चौथे अध्यायमें हम देख चुके हैं कि उनसे हमें शक्ति तो नहीं प्राप्त होती पर इतना जरूर है कि वे कब्जको दूर करनेमें सहायक होते हैं।

दूध भी ऐसी ही चीज है जिसका गुण हम अपने हाथसे नष्ट कर देते हैं। कहा जाता है कि दूधको अधिक पकानेसे उसके विटामिन कम हो जाते हैं। किन्तु दूसरी ओर यदि दध पकाया हुआ नहीं रहता तो वह अधिक हानि पहुँचाता है। उससे बीजाणुओंके पैदा होनेका अन्देशा रहता है। ऐसा दूध पीना खासकर बच्चोंके लिए बड़ा ही खतरनाक है। इस सङ्कटसे बचनेके लिए इधर एक उपाय मालूम किया गया है। वह है दूधको उबालनेकी जगह पास्चरी तरीकेपर उसके बीजाणुको नष्ट करना। इस पद्धतिका नाम लुई पासचरके नामपर रखा गया है। इसमें दूधको हलकी आँचपर बीस मिनटतक रखा जाता है। इससे बीजाणु उसी तरह मर जाते हैं जिस तरह उबालनेसे मरते हैं किन्तु इस हल्की आँचसे विटामिन जलने नहीं पाते। भारतवर्षमें दूधको किसी भी हालतमें कच्चा इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। यदि ऊपरकी रीतिसे मधुर आँचसे दूध पकाना असुविधाजनक हो तो कड़ी आँचसे पका लेना चाहिये किन्तु कच्चे दूधको इस्तेमाल तो किसी भी दशामें नहीं करना चाहिये।

दूधकी बर्बादी एक तरहसे और की जाती है। वह है मट्ठेको ठीक-ठीक काममें न लाना। मट्ठा असली दूधके बराबर शक्तिवर्धक नहीं होता क्योंकि उसका मक्खन निकाल लिया जाता है; किन्तु फिर भी उसके अन्दर प्रोटीन, शक्कर और नमकका अंश रहता है और इन चीजोंकी एक-एक बूँद काममें लाना चाहिये। यूरोप और अमेरिकाके

लोग मट्ठेका मूल्य जानते हैं। इसीसे वे भारतके कुछ प्रान्तोंमें बहुत सस्ते दाममें मट्ठा खरीदकर अपने देशमें भेजते हैं और वहाँ उससे केसिन अथवा अनेक तरहके स्वास्थ्यप्रद टानिक तैयार किये जाते हैं। उसके बाद वहाँके चतुर लोग उसके कुछ अंशको खूबसूरत बोतलोंमें भरकर दुबारा भारतमें भेजते हैं और हमलोग ऐसे मूर्ख हैं कि उन्हें खरीदते हैं। यदि हम चाहते तो पहले उसे कुछ आनोंमें खरीद लेते; किन्तु उस ओर जरा भी ध्यान हम नहीं देते और वही चीज जब सजधजके साथ बोतलोंमें बन्द होकर विदेशसे आती है तो हम कई रुपया देकर उसे खरीदनेमें जरा भी नहीं हिचकते।

खानेकी चीजोंका प्राकृतिक मूल्य बढ़ानेका एक उपाय हम चौथे अध्यायमें दालके प्रसङ्गमें देख चुके हैं। वहाँ हमने यह देखा था कि दालका अंकुर निकालकर विटामिन 'सी' पैदा किया जा सकता है।

अबतक हमने उन चीजोंके सम्बन्धमें बातें कही हैं जिन्हें खरीदनेमें रुपया लगता है किन्तु कुछ ऐसी चीजें भी हैं जिन्हें पैसा देकर खरीदनेकी कोई जरूरत नहीं, प्रकृति हमें मुफ्त देती है। वह है ताजी हवा, धूप और पानी। इन तीनों चीजोंको भी खाद्य वस्तुओंमें ही समझना चाहिये। दुर्भाग्यवश, इनको हम अनायास पाते हैं इसलिए इनका मूल्य ठीक-ठीक नहीं समझते। बहुतसे लोगोंकी यह धारणा है कि जो चीज हमें मुफ्तमें मिले वह चीज बेकार है। ताजी हवा और धूप हाजमा और ताकत बढ़ानेमें मदद पहुँचाती है। तेज धूप हमारे शरीरमें विटामिन 'डी' का सञ्चार करती है। इस विटामिनसे शरीरमें अच्छी शक्ति पैदा होती है। इसीसे देखा जाता है कि दक्षिण और मध्य भारतके लोगोंके भोजनमें विटामिन 'डी' की कमी रहनेपर भी वे सूखे और ओस्टीमलेशियाकी बीमारियोंसे जो इस विटामिनकी कमीके कारण उत्तर भारतके लोगोंको, खासकर पर्देमें रहनेवाली स्त्रियोंको विशेष रूपसे होती हैं—बचे रहते हैं। पर्देकी प्रथाके कारण उत्तर भारतकी स्त्रियोंको धूप नहीं लग पाती, इसीसे वे उक्त रोगोंका शिकार पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक बनती हैं।

अन्यान्य खराबियोंके सिवा केवल तन्दुरुस्तीके कारण भी पर्दाप्रथा उठा देनी चाहिये।



जो भोजन पेटमें अच्छी तरह हजम नहीं हुआ रहता उसे पानी गीला करता है और पचानेमें सहायता पहुँचाता है। पानी खूब पीना चाहिये—खासकर भोजन करते समय बीच-बीचमें अवश्य पीते रहना चाहिये।

भोजन और आमदनी

१३

हमारे भोजनमें पौष्टिक तत्व क्यों कम रहता है और वह पूर्ण रीतिसे सन्तुलित नहीं होता इसके एक दो कारण नहीं हैं बल्कि बहुतसे कारण मौजूद हैं। इसका एक कारण तो है विभिन्न भोजनके गुण-दोषके सम्बन्धमें देशवासियोंकी घोर अनभिज्ञता। दूसरा कारण है अभ्यासका दोष। प्रायः धार्मिक संस्कारोंके कारण इस आदत या प्रथाका जन्म होता है। किन्तु असली कारण न तो अनभिज्ञता है और न आदतका दोष ही। असल कारण है गरीबी। खाली पेटका प्रधान कारण है जेबका खाली रहना।

लोगोंकी आमदनीके अनुसार भोजनकी मात्रा ही नहीं बढ़ती बल्कि भोजनके गुणकी ओर भी दृष्टि जाने लगती है। यह बात केवल इसी देशके सम्बन्धमें सही नहीं है बल्कि दूसरे देशोंके लिए भी है। मालदार लोग स्वभावतः अच्छा भोजन करते हैं यद्यपि उनके भोजनकी मात्रा ठीक नहीं रहती। मध्यम श्रेणीवालोंको उतना उत्तम अच्छा भोजन नहीं जुटता यह ठीक है, किन्तु वे निहायत खराब भोजन भी नहीं करते। लेकिन किसानों और मजदूरोंकी दशा बड़ी ही शोचनीय है; उन्हें आवश्यकताके अनुसार भोजन कभी भी नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि दूध, तरकारियाँ, फल, अण्डे तथा मांस आदि पौष्टिक चीजें चावल, दाल आदि अन्नकी अपेक्षा स्वभावतः महँगी रहती हैं। हम पहले ही कह आये हैं कि एक एकड़ जमीनमें किस तरह अनाजकी अपेक्षा मांस, दूध और अण्डोंकी पैदावार कम होती है; इसीसे ये चीजें मँहगी पड़ती हैं और किसानों

मजदूरोंके नसीबमें ये चीजें नहीं रहतीं। अच्छी चीजें स्वाभाविक ही साधारण चीजोंकी अपेक्षा अधिक महँगी हुआ करती हैं।

खाद्य-विशेषज्ञोंने देशके विभिन्न भागोंमें जो जाँच की है, उससे पता चलता है कि आपके साथ-साथ खाद्य-वस्तुओंके गुण-दोषमें अन्तर पड़ जाता है। जमशेदपुरके टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्सके मजदूरोंके डाक्टर श्री के० मित्रने सन् १९३९ में इस तरहकी जाँच की थी। उनकी जाँचका फल नीचे दिया जाता है—

	१	२	३	४
मासिक आय	३० रुपये तक	३० रु०से ४५ रु०तक	४५ रु०से ९० रु०तक	९० रु० और उससे अधिक
दैनिक आहार		औंसमें		
अनाज	२३·९	२४·४	२७·१	२१·०
दाल	२·४	३·१	३·८	३·४
बिना पत्तेकी तरकारियाँ	२·३	२·७	५·५	६·२
पत्तेदार ,,	१·२	१·०	०·३	०·१
फल और गिरीदार मेवे	०·१	०·३	०·९	०·९
तेल और स्निग्ध पदार्थ	०·५	०·८	१·३	१·८
दूध	०·५	१·४	२·६	५·७
मांस, मछली और अण्डे	०·६	०·७	१·३	१·०
अचार इत्यादि	०·७	१·९	१·६	१·६
चीनी और गुड़	०·१	०·३	०·७	०·८
कैलोरी	२९४०	३१९०	३२५०	३३३०
अनाजसे प्रतिशत	८३·९	७४·९	६८·०	६१·८

इन आँकड़ोंसे आपको मालूम होगा कि मजदूरोंकी ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है त्यों-त्यों वह अच्छी और अधिक किस्मकी चीजें खाने लगते हैं। इस बातका पता केवल खूराककी मात्रासे जिसका वर्णन कैलोरीमें किया गया है, नहीं चलता बल्कि खूराकके सन्तुलनसे भी चलता है।

उदाहरणार्थ, जिस आदमीकी मासिक आय ९० रु० से अधिक है वह अपनेसे कम आयवालोंकी अपेक्षा अनाज कम खाता है, किन्तु उसका खर्च दूध और तरकारी आदिमें कम आयवालोंकी अपेक्षा बहुत अधिक होता है।

सन् १९४१-४२ में गुजरात अनुसन्धान समितिने बम्बई शहरमें रहनेवाले निम्न श्रेणीके मध्यवित्त गुजरातियोंके भोजनकी जाँच की थी। उस समितिने भी यही परिणाम निकाला था। चार श्रेणीका हिसाब लिया गया था। पहली श्रेणीके लोगोंकी मासिक आय ५० रुपयेसे कम, दूसरी श्रेणीके लोगोंकी ५१ रुपयेसे १०० रुपयेतक, तीसरी श्रेणीकी १०१ रुपयेसे १५० रुपयेतक और चौथी श्रेणीकी १५० रुपयेसे अधिक थी। नीचे दिये हुए हिसाबसे आपको मालूम हो जायगा कि मुख्य-मुख्य खाद्यवस्तुओंके बारेमें चारो श्रेणियोमें कितना अन्तर है—

आयकी श्रेणी	अनाज और दाल	घी और तेल	चीनी और गुड़	दूध और दूधकी चीजें	साग-सब्जी
	औंस	औंस	औंस	औंस	औंस
पहली	१५·६	२·१९	१·१८	५·७	४·२
दूसरी	१२·७	२·१८	१·४५	९·२	६·०
तीसरी	११·७	२·५९	१·८४	१०·६	६·२
चौथी	१२·३	२५·३	१·०७	११·१	६·८

इससे मालूम होता है कि आय बढ़नेके साथ खूराक अच्छी हो जाती है। इस तालिकासे यह भी मालूम होता है कि १५० रुपयेसे अधिक आयवाली श्रेणीमें केवल २० प्रतिशतको सन्तुलित भोजन मिलता था।

कौन आदमी कितना दूध पीता है यह बात उस आदमीकी आय देखकर ही कही जा सकती है। सन् १९४३ में लाहौरकी एक जाँचकी रिपोर्ट दूधकी बिक्रीके सम्बन्धमें पेश की गयी थी। उससे मालूम होता है कि २५ रुपयेतक मासिक आयके लोग तीन औंस यानी डेढ़ छटाँक-

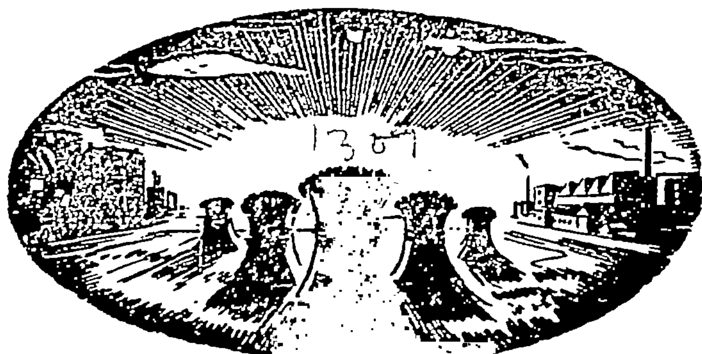
से भी कम दूध प्रतिदिन पीते हैं। इधर एक हजार रुपयेसे ऊपर मासिक आयके लोग ३१ औंस यानी एक सेर दूध रोजाना पीते हैं। नीचेकी तालिकामें वह हिसाब दिया जाता है :—

२५	रुपयेतक	...	३·८	औंस	दूध	फी आदमी	रोजाना
२६	रु०से	५० रु०तक	९·२	,,	,,	,,	,,
५१	रु०से	१०० रु०तक	१२·०	,,	,,	,,	,,
१०१	रु०से	२०० रु०तक	१३·६	,,	,,	,,	,,
२०१	रु०से	५०० रु०तक	१६·०	,,	,,	,,	,,
५०१	रु०से	१००० रु०तक	२०·०	,,	,,	,,	,,
१०००	रु०से	ऊपर	३१·२	,,	,,	,,	,,

अनुमान है कि भारतवासियोंकी औसत आय ६५ रुपया सालाना यानी प्रत्येक आदमीकी आय ५ रुपया ७ आना मासिक है। पाँचवें अध्यायमें सन्तुलित भोजनका हिसाब लिखा गया है। उसकी लागतका अनुमान युद्धसे पहले ४ रुपये से ६ रुपये मासिक फी बालिग मर्द या १६ रुपयेसे २४ रुपया एक परिवारके लिए जिसमें माँ-बाप और तीन बच्चे हों— लगाया गया है। किन्तु भोजनके अतिरिक्त और चीजोंकी भी जरूरत होती है। इसलिए सन्तुलित भोजन हममेंसे अधिकांश लोगोंके वशके बाहरकी बात है। यही कारण है कि ये लोग भोजनके लिए आधेसे अधिक रुपया खर्च होनेपर भी भोजनकी खराबीकी मुसीबतमें फँसे हैं। बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर, मद्रास और कलकत्ता आदि शहरोंके मजदूरोंके बारेमें जाँच करके देखा गया है कि वे अपनी आयका ५० से ६० प्रतिशत तक अपने तथा अपने परिवारके खानेमें खर्च करते हैं। यह अक्षरशः सत्य है कि उनको जीवनकी आधी लड़ाई भोजनकी प्राप्तिके लिए ही लड़नी पड़ती है। जो लोग सबसे अधिक मिहनत करते हैं और जिन्हें सबसे अधिक भोजनकी जरूरत है, वे बेचारे सबसे कम भोजन करके जिन्दगी गुजर करते हैं। खाद्य-विशेषज्ञोंमें अग्रगण्य लावो-शियरने इस विषम अवस्थाका वर्णन नीचे लिखे शब्दोंमें किया है—

'यह कैसा वैषम्य है कि एक गरीब आदमी जो मजदूरी करके अपनी रोजी चलाता है और जीवित रहनेके लिए घोर परिश्रम करनेके लिए पाबन्द है, वह बेचारा तो पर्याप्त भोजन नहीं पाता किन्तु एक अमीर आदमी जिसकी शारीरिक शक्ति परिश्रम न करनेके कारण बहुत कम क्षीण होती है—ठूँस-ठूँस कर खाता है। इसका जिम्मेदार कौन है? वस्तुतः जो आदमी परिश्रम करके अपनी शारीरिक शक्ति नष्ट करता है उसके लिए अपनी नष्ट होनेवाली शक्तिकी पूर्ति करनेके निमित्त अमरीका भोजन मिलना विशेष उपयुक्त है।'

ये सब निराशाजनक बातें हैं। किन्तु यह जानकर निराशा कुछ कम हो जाती है कि मूर्खता और कुसंस्कारके रहते हुए भी भारतवासी अन्यान्य देशवालोंकी तरह ज्यों ही उनकी आय कुछ बढ़ती है त्यों ही वे अपने लिए अच्छे भोजनका प्रबन्ध कर लेते हैं। पैदावार बढ़ाने, आबादीको सीमित रखने तथा अन्यान्य विशेष व्यवस्थाओं द्वारा हमारी यह अवस्था सुधर सकती है, इसमें सन्देह नहीं है; किन्तु आमदनी बढ़नेपर हमारे देशवासियोंको और भी अच्छा खाना मिल सकेगा यह बात बिलकुल निश्चित है। कृषि, शिल्प और व्यापार आदिसे भी आमदनी बढ़ायी जा सकती है। इससे यह साबित होता है कि खूराक कोई अलग चीज नहीं है, वह दरिद्रता दूर करनेके लिए किये जानेवाले युद्धसे सम्बद्ध है। देशके सामने दरिद्रता दूर करनेकी समस्या ही आज सबसे बड़ी समस्या है। सब लोगोंको मिलकर यह समस्या दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिये।



गांधी अध्ययन केन्द्र

तिथि	तिथि